गांधी जी की देन

द्र प्रसाद

लेखक गांधीजी के साथ

गांधीजी की देन

—गांधीजी के गुण, कार्य और सिद्धान्तों पर विचार—

राजेन्द्रप्रसाद

१९६८
सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

प्रकाशकीय

'मण्डल' ने अबतक महात्मा गांधी की अनेक पुस्तकें प्रकाशित की हैं। कुछ पुस्तकें उनके विषय में अन्य लेखकों की निकली हैं और कुछ उनकी विचारधारा-संबंधी। प्रस्तुत पुस्तक इसी दशा का एक मूल्यवान प्रकाशन है। विद्वान लेखक को न केवल गांधीजी के दीर्घ और घनिष्ठ संपर्क का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, अपितु गांधीजी की विचारधारा को उन्होंने निष्ठापूर्वक अपने जीवन में स्वीकार किया है। गांधीजी के मार्ग के वह पूर्ण समर्थक हैं। वह आज भारतीय गणराज्य के सर्वोच्च स्थान पर आसीन हैं, फिर भी उनके जीवन और रहन-सहन में वही सादगी और आडम्वर-हीनता है, जो पहले थी।

इस पुस्तक की उपयोगिता इस कारण भी है कि इसमें जो कुछ कहा गया है, बड़े ही संयत ढंग से और स्पष्ट शैली में कहा गया है। इसमें शब्दों का जाल नहीं है और न कहीं विचारों की दुरूहता ही है। गूढ़-से-गूढ़ सिद्धांतों का प्रतिपादन उन्होंने सरल-से-सरल भाषा में कर दिया है।

श्री वाल्मीकि चौधरी ने इसके कई दुर्लभ भाषण, जो अबतक कहीं भी प्रकाशित नहीं हुए थे, तथा अन्य सामग्री प्रकाशन के लिए सुलभ कराई, तदर्थ हम उनके आभारी हैं।

चौथा संस्करण

पुस्तक का चौथा संस्करण उपस्थित करते हुए हमें बड़ा हर्ष हो रहा है। आशा है, पाठक इस मूल्यवान पुस्तक का मनोयोगपूर्वक अध्ययन करेंगे और इससे लाभ उठावेंगे।

—मंत्री

प्रस्तावना

जब-जब मुझे गांधीजी के संबंध में कुछ कहने या बोलने को कहा गया, मैं बराबर कुछ हिचकिचाता रहा, और वह इसलिए कि उनके समस्त सिद्धान्तों को पूर्णरूप से समझना और फिर लोगों को समझाना, कम-से-कम मेरी शक्ति के बाहर की बात है। जो कुछ थोड़ा-बहुत मैं समझ और सीख सका, उसके बारे में भी मुझे इस बात का संकोच हमेशा रहा है कि मैं उन सिद्धान्तों को अपने व्यक्तिगत व सार्वजनिक जीवन में कहांतक अमल में ला सका हूं। मेरा और उनका तीस-इकतीस बरस का अत्यन्त निकट सम्पर्क रहा था और उस बीच मैंने उनसे बहुत-कुछ शिक्षा—सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक व नैतिक—हरेक दृष्टि से प्राप्त की। मैंने एक जगह लिखा था कि उनकी विचारधाराएं हिमालय से निकलनेवाली निर्मल गंगा की तरह पवित्र हैं और उन्हीं धाराओं से जो कुछ जल मैं संचित कर सका, उसके बल पर मुझे भी जनता-जनार्दन की सेवा करने का थोड़ा-बहुत सौभाग्य प्राप्त हुआ। यद्यपि उनके समस्त सिद्धान्तों व शिक्षाओं का प्रचार और प्रसार करने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है, फिर भी उनके साथ सेवा करते-करते जो कुछ अनुभव मैंने प्राप्त किया है, उसके आधार पर भारत और संसार को गांधीजी की अनुपम देन के बारे में इस पुस्तक में अपने विचार व्यक्त करने का प्रयत्न किया है, क्योंकि यह एक प्रकार से अपने कर्त्तव्य का पालन करना और अपने उत्तरदायित्व को निबाहना भी है। पर यह मैं नहीं कह सकता कि अपने इस कार्य-भार को चुकाने में मैं कहांतक सफल हो सका हूं।

समय-समय पर दिए गए मेरे भाषणों का यह संग्रह 'गांधीजी की देन' पर प्रकाश डालता है। मानव-जीवन की, विशेषकर भारतीय जीवन की, कोई ऐसी समस्या नहीं है, जिसपर उनका ध्यान न गया हो और जिसे सुलझाने का उपाय भी उन्होंने न सुझाया हो, यहांतक कि उन्होंने स्वयं अपने व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन में सफलतापूर्वक उनका प्रयोग

भी किया था, जिसके लिए उनका जीवन और इतिहास साक्षी है। उनका यह विश्वास था कि अगर भारतवासी उनकी वाणी और सिद्धांतों को समझकर उनपर अमल करने लग जायं तो संसार के अन्य देशों के लोगों पर भी उसका अच्छा असर पड़ेगा। इसलिए अब हम लोगों का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि हम उनके सिद्धांतों को समझें, उनका मनन करें और उनके दृष्टिकोण को लेकर न सिर्फ अपना व्यक्तिगत जीवन ही बितायें, बल्कि सार्वजनिक जीवन में भी, जहांतक हो सके हरेक क्षेत्र में, उन सिद्धांतों को अमल में लावें।

भारत जैसे विशाल और बहुसंख्यक आबादीवाले देश को अहिंसात्मक ढंग से स्वतन्त्र और खुशहाल करने पर उनका ध्यान सबसे पहले गया था। इसके बाद उनका ध्यान यह था कि सबको काम देना चाहिए, चूंकि वह मानते थे कि बेकार समय के इस सदुपयोग से जहां लोगों की कुछ आमदनी बढ़ती है, वहां नैतिक उत्थान भी होता है, क्योंकि बेकार समय लोगों को नीचे गिराता है। यह उनका चेतन संकेत रहा है। शिक्षा पर विचार करते हुए भी उन्होंने यही दृष्टिकोण रखा था, इसी आधार पर खादी और ग्रामोद्योग का एक अलग अर्थशास्त्र उन्होंने माना है। अपनी जरूरत की चीजों को स्वयं पैदा कर लेना, जिससे दूसरों का मोहताज न रहना पड़े, और साथ ही अपनी महत्त्वाकांक्षाएं भी न बढ़ें, यही इन सिद्धांतों का मूल तत्त्व रहा है। युद्धों का मूल कारण व्यक्तियों और राष्ट्रों की इच्छाएं और महत्त्वाकांक्षाएं ही हैं। जब व्यक्तियों और राष्ट्रों की इच्छाओं और महत्त्वाकांक्षाओं में संघर्ष होता है तो उससे प्रतिद्वंद्विता और हिंसा पैदा होती है। यही युद्ध का मूल कारण बनती है और इसीसे शोषित और शोषक वर्ग भी पैदा होते हैं। इन सब बातों को ध्यान में रखकर उन्होंने बहुत-सी बातें हमें सिखाईं। उनके सिखाने का मार्ग भी शांति और प्रेम का था। अपने जीवन-काल में उन्होंने प्रधानतः इसपर बहुत ज़ोर दिया। हमारे यहां अहिंसा की जो परम्परा चली आ रही है, उस परम्परा को गांधीजी ने कायम रखा।

आज संसार में कई विचार-धाराएं चल रही हैं, जो आपस में एक-दूसरे से टकरा भी रही हैं। गांधीजी की विचारधारा पर भी लोगों का ध्यान गया है और मुझे विश्वास है कि यदि संसार को जीवित रहना है और आपस की लड़ाई से टुकड़े-टुकड़े नहीं होना है तो उसे गांधीजी की विचारधारा के अनुसार ही चलना होगा, जो भारत के लिए ही नहीं, सारी दुनिया के लिए है। इन्हीं सब तत्त्वों को लेकर इस छोटी-सी पुस्तक को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है। जब कभी मुझे उनके संबंध में कुछ कहने का मौका मिला है, मैंने इस प्रकार का दृष्टिकोण रखा है और लोगों ने इसे पसंद भी किया है।

'सस्ता साहित्य मंडल' इन विषयों के प्रकाशन पर विशेष रूप से ध्यान देता आया है और उनका आग्रह रहा है कि इस संबंध में मेरे जो भाषण हुए हैं, उन्हें अगर एकत्र कर पुस्तक का रूप दिया जाय तो उनका उचित उपयोग हो सकता है। उनका आग्रह मानकर ही मैंने अपने कुछ भाषणों को प्रकाशित करने की इजाजत दी है। इनमें वे भाषण भी हैं, जो मैंने गांधीजी के १९४२ वाले अहिंसात्मक आंदोलन में जेल-प्रवास के समय अपने साथी बन्दी-जनों के बीच दिये थे, जो अभी तक कहीं छपे नहीं हैं। इसके अलावा और कई भाषणों के साथ सबसे अन्तिम वह भाषण भी है, जो अभी हाल में सारे संसार के गांधी-विचारकों की एक बृहत गोष्ठी में, जो दिल्ली में हुई थी, दिया था। अगर यह संग्रह थोड़ा भी उपयोगी साबित हुआ तो मैं इसे अपना परम सौभाग्य मानूंगा।

राष्ट्रपति भवन
नई दिल्ली
२६-९-१९५३

विषय-सूची

गांधीजी की देन

१

गांधीजी की महानता

महात्मा गांधी आज हिन्दुस्तान के ही नहीं, बल्कि समूची दुनिया के एक विख्यात महापुरुष हैं; किंतु बचपन में वह भी उसी तरह के बच्चे होंगे, जिस तरह के बच्चे हम आज भी खेलते-कूदते देखते हैं। वास्तव में महात्माजी ने जो-कुछ हासिल किया है, जिस किसीके कारण महात्माजी को हम इतना जानते और पूजते हैं, वह सबकुछ उन्होंने अपने प्रयत्न, साधना या तपस्या आदि जो-कुछ कहें, के जरिए पाया है। इसी तरह सब बच्चे विकास पाकर बड़े हो सकते हैं। किंतु 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।' कुछ-कुछ अंशों में उनका बड़प्पन उनके बचपन में भी नजर आता था। सचमुच उनके बचपन की छोटी-छोटी बातें ही, जो बीज-रूप में थीं, विकसित होती गईं और उन्होंने उनकी तपस्या के साथ विस्तार पाया। हम उनके जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं को देखें तो यह बात साफ मालूम होने लगती है कि गांधीजी की छोटी-सी बातों में भी सत्य का कितना बड़ा रूप छिपा है!

उनके बचपन की एक घटना लीजिये। आज गांधीजी हरिजनों के प्रसिद्ध सेवक और सच्चे हिमायती हैं। अछूतोद्धार के लिए उन्होंने जो-कुछ किया है, वह जग-जाहिर है। किंतु जब गांधीजी भोले और अबोध बालक थे, तभी उनके हृदय में इसका अंकुर उगा था। महात्माजी का परिवार श्रद्धालु वैष्णवों का परिवार था। इसलिए छूतछात आदि की कट्टरता वहां काफी रही होगी। महात्माजी खुद लिखते हैं कि एक बार

ओखा (मेहतर) से छूत लग जाने का कारण वह न समझ सके। शायद किसी दिन वह ओखा से, जो उनके घर सफाई करने आता था, छू गये होंगे, जिसके कारण उन्हें नहा-धोकर पवित्र होने को कहा गया होगा। महात्माजी के मन में यह सवाल उठा कि सबकी देह से सटने पर छूत नहीं लगती है; पर ओखा ही के शरीर से छू जाने पर छूत क्यों लगती है? भोले-भाले गांधीजी माताजी से पूछने गये। माताजी ने उसका कारण समझाया-बुझाया; किंतु उनके सवाल का संतोषजनक उत्तर न मिल सका। ओखा ने उनके दिल में जो अंकुर पैदा कर दिया, जो हलचल उत्पन्न कर दी, उसका रूप अबतक आप अच्छी तरह देख चुके हैं।

महात्मा गांधी माता-पिता के बड़े भक्त और आज्ञाकारी रहे हैं। पढ़-लिख जाने पर भी उनकी आज्ञाकारिता मजबूत ही होती गई। वह जब पढ़ने के लिए विलायत जाने लगे तो माताजी ने पुत्र को कई आदेश-उपदेश दिये। वह सुनती थीं कि विलायत में स्त्रियों को बहुत आजादी है और वे खूब मिला-जुला करती हैं। इसलिए उन्होंने गांधीजी को उनसे बचे रहने का उपदेश दिया। इसके अलावा विलायत में तो मांस-मद्यादि का खूब प्रचार है। माता का आदेश था कि उन्हें कभी नहीं खाना-पीना। गांधीजी ने इन आदेशों का सफलतापूर्वक पालन किया। ऐसा नहीं कि उनके जीवन में उन आदेशों के भंग हो जाने के अवसर ही नहीं आये। वे आये और जरूर आये; किंतु युवक गांधीजी ने माताजी को जो वचन दिया था, उसका पालन उन्हें हमेशा हर जगह करना ही था और उन्होंने खूबी से किया।

महात्माजी का सार्वजनिक जीवन अफरीका में शुरू हुआ। अफरीका पहले बसने लायक भूमि नहीं समझा जाता था। धनी गोरे अंग्रेज वहां की भूमि को बसने लायक बनाना चाहते थे; किंतु उनके लिए खुद यह काम करना मुश्किल था। अतः वे हिन्दुस्तान से लोगों को वहां ले जाने लगे। हमारे ही भाई वहां जाकर जमीन को तोड़ते-जोतते और रहने-सहने लायक बनाते गये। सच पूछिये तो वह प्रवासी हिन्दुस्तानियों का ही

देश है। उन्होंने उस बाग को सब्ज बनाया। किन्तु आज भी उनकी दशा हमारी ही-सी, बल्कि उससे भी गई-बीती है। महात्माजी जिन दिनों बैरिस्टरी करने के लिए कुछ भारतीय व्यापारियों के यहां दक्षिण अफरीका गये थे, उन दिनों हिन्दुस्तानियों की हालत वहां भी बुरी और दर्दनाक थी। ठीक ही है, ये हिन्दुस्तानी भाई तो बैल थे! इन्होंने ही दक्षिण अफरीका को बसाया और रहने लायक बनाया तो इससे क्या! बैल तो भूमि को जोतते हैं; किंतु वे उसकी फसल के स्वामी थोड़े ही होते हैं। उन्हें तो खटने के बदले कुछ खिला-पिला दिया जाता है। आज भी हमें बैलों से जितनी कड़ी मेहनत लेनी होती है, उसी हिसाब से अच्छी खुराक देते, कम देते या नहीं देते हैं। ठीक उसी तरह दक्षिण अफरीका हालांकि हिन्दुस्तानियों का ही बसाया हुआ है और इसलिए उनका ही देश है, फिर भी उन्हें उतने ही अधिकार मिले, जितने से यूरोपियनों के काम निकल सकते थे। गांधीजी जब कुछ भारतीय व्यापारियों के मामले की पैरवी करने लगे तो उन्हें धीरे-धीरे भारतीयों पर होनेवाले अत्याचार स्पष्ट नज़र आने लगे। उन्होंने उनका दुःख दूर करना अपना आवश्यक कर्तव्य समझा। इसलिए उन्होंने विचार किया कि वह जिन मामलों को लेकर आये थे उन्हें खत्म करके ही नहीं लौट जायंगे, बल्कि वहीं रहकर हिन्दुस्तानियों के दुःख दूर करने की कोशिश करेंगे। वह उनकी मुसीबतों की जांच-पड़ताल करने लगे। उनका नाम फैलने लगा। यूरोपियन उनको संदेह की नज़र से देखने लगे।

जब गांधीजी हिन्दुस्तान से अफरीका के लिए जहाज पर रवाना हुए तो दक्षिण अफरीका के यूरोपियनों में बड़ी खलबली मची। वे गांधीजी को न आने देने पर तुल गये और आने पर मार डालने की धमकी देने लगे। इसी बीच महात्माजी का जहाज बन्दरगाह में आ पहुंचा। पहले ही से गांधीजी को न उतरने देने के लिए और उतरने पर मारने-पीटने के लिए लोगों की भीड़ इकट्ठी थी। वहां की सरकार तो गांधीजी को बचाना चाहती थी; पर वह बिगड़े हुए

लोगों के सामने लाचार थी। बात यह है कि वहां की सरकार तो वहीं के यूरोपियनों की अपनी सरकार थी। इसलिए अगर प्रजा ही बिगड़ी, हो तो सरकार उनकी ख्वाहिश के खिलाफ उन्हें कैसे दबाकर कोई काम कर सकती थी ? इसलिए जहाज पर ही वहां की सरकार की पुलिस का कोई अफसर गांधीजी से मिलने आया और गांधीजी को जहाज पर से न उतरने की सलाह दी। उसने कहा, "लोग बेतरह बिगड़े हुए हैं और उतरने पर आपकी जान को खतरा है। मैं तो पुलिस का भरसक इन्तजाम कर रहा हूं; किंतु मुझे भय है कि मैं शायद ही आपकी हिफाजत कर पाऊं। इसलिए मेरी तो सलाह यह है कि चार-पांच दिन के बाद जब यह जहाज वापस जायगा तो आप तबतक ठहरकर इसी पर लौट जायं।" किंतु अब तो महात्माजी का निश्चय और भी पक्का हो चुका था। उन्होंने कहा कि "मैं तो उतरूंगा ही। क्या होगा, वे ज्यादा-से-ज्यादा मुझे मार डालेंगे ? मैं उसके लिए भी तैयार हूं। मुझे आपकी मदद की भी कोई आवश्यकता नहीं है। मैं अकेला ही उतरूंगा और जरूर उतरूंगा।" वहां की सरकार कानूनी ढंग से उन्हें अपने देश में आने से रोक नहीं सकती थी। इसलिए गांधीजी का उतरना ही तय रहा। गांधीजी ने मन में सोचा कि मैं इनसे क्यों डरूं ? और कोई इनसे कबतक डरे ? डरने से तो काम चलेगा नहीं। इसलिए इनसे निर्भय हो जाना ही ठीक है। अधिक-से-अधिक जान चली जायगी; पर निडर होकर ही दूसरों को भी निडर किया जा सकता है। महात्माजी उतर पड़े। नतीजा वही हुआ, जिसकी उम्मीद थी। पुलिस उनकी रक्षा न कर सकी। उनपर खूब मार पड़ी और उन्हें बेहोश करके उपद्रवी छोड़कर चलते बने। पुलिस ने उन्हें उठाकर दवा आदि की व्यवस्था की। स्वस्थ होने पर पुलिसवाले उन्हें मुकदमा चलाने को कहने लगे। उन्होंने कहा कि अगर वे उपद्रवियों पर मुकदमा चलायें तो पुलिस उन्हें काफी मदद देगी। किंतु गांधीजी ने कहा कि मैं तो अपनेको उनका मित्र समझता हूं। वे अगर मुझे अपना दुश्मन समझें तो मेरा इसमें क्या चारा ? मैं तो उनपर किसी तरह

का मुकदमा नहीं चलाना चाहता। समय आने पर जब वे मुझे निर्दोष समझ लेंगे तो उन्हें खुद अपनी गलती पर पछतावा होगा। उस दिन से महात्माजी ने कभी किसीका कुछ भय नहीं किया और दूसरों के भय को भी दूर करते रहे।

इस उदाहरण से आप देखेंगे कि गांधीजी ने हम लोगों को किस तरह भय-मुक्त किया।

आपने चम्पारन-सत्याग्रह का नाम सुना होगा। चम्पारन आज जितना खुशहाल और हरा-भरा है, उतना इस शताब्दी के शुरू में नहीं था। वहां की धरती आज की-सी उपजाऊ थी, मगर उन दिनों वहां निलहे अंग्रेजों की कोठियां बहुत थीं। उनके अत्याचारों से सारे किसान अत्यन्त पीड़ित थे। उन्हें अंग्रेजों के लिए मुफ्त में खटना ही नहीं पड़ता था, बल्कि हल, बैल और बीज से निलहों की बेगारी करनी पड़ती थी। 'तीन कठिये' की प्रथा का नाम आपने सुना होगा। उसके कारण उन किसानों की कमर टूट रही थी। एक बार जब गांधीजी लखनऊ आये हुए थे तो उनका ध्यान चम्पारन की ओर आकृष्ट करने का श्रेय श्री राजकुमार शुक्ल और श्री ब्रजकिशोरबाबू को है। ब्रजकिशोरबाबू एक वकील थे, उनको साथ लेकर शुक्लजी महात्माजी से मिलने गये। उन्होंने चम्पारन का किस्सा कह-सुनाया। पहले तो गांधीजी ने उन्हें एक वकील ही समझा और शुक्लजी को उनका मुवक्किल; किन्तु पीछे उन्हें मालूम हुआ कि ब्रजकिशोरबाबू हम लोगों में सबसे आगे बढ़े हुए उत्साही जीव थे।

गांधीजी जब मुजफ्फरपुर आये तो उन्हें उन दिनों अधिक लोग नहीं जानते थे। फिर भी उनके दर्शन और स्वागत के लिए सैकड़ों आदमी रेल-किराया देकर मोतीहारी से आये। गांधीजी अपने काम के संबंध में कुछ लोगों से मिले; किन्तु इसके बाद ही जब वह मोतीहारी गये तो स्टेशन पर उनके स्वागत के लिए चार-पांचसौ की भीड़ इकट्ठी थी। वहां के कलक्टर का हुक्म निकला कि गांधीजी का मोतीहारी जिले में ठहरना जुर्म समझा

जायगा। वह २४ घंटे के भीतर पहली गाड़ी से बाहर चले जायं। ऐसा तो अबतक किसीके बारे में नहीं हुआ था। किसीके किसी जिले में आने-जाने पर रोक नहीं लगाई गई थी।

गांधीजी ने सरकार के इस हुक्म को मानने से इन्कार कर दिया। उन-पर मुकदमा चला। चारों ओर तहलका मच गया। जब मजिस्ट्रेट के सामने गांधीजी लाये गए तो सरकारी वकील ने समझा कि वह बैरिस्टर हैं। कानूनी किताबों का बोझ गाड़ी पर लदवाकर लायेंगे। खूब बहस होगी। इसलिए काफी तैयारी थी; किन्तु गांधीजी को तो कुछ और ही करना था। जिस समय गांधीजी लाये गए, अदालत में सैंकड़ों आदमी जमा हो रहे थे। मजिस्ट्रेट ने सारी खिड़कियां बन्द कर मुकदमा शुरू किया। इधर लोग इतने बेताब हो रहे थे कि उन्होंने खिड़कियों के शीशे आदि फोड़ डाले। गांधीजी ने उन्हें बाहर आकर समझा दिया। वे शान्त हुए। फिर महात्माजी ने एक बयान दिया। उस बयान में उन्होंने कहा—"मैं यहां दुःखी और पीड़ित भाइयों की तकलीफों का पता लगाने आया हूं। इसमें मेरा मतलब उनकी शिकायतों की जांच करके उनकी सेवा करना और दुःख दूर करना ही है। सरकार अपने हुक्म से मुझे यहां से निकालकर यह काम करने से रोकना चाहती है; किन्तु मैं उनकी तकलीफ दूर करना चाहता हूं। इसलिए सरकारी हुक्म तोड़ने का दोष मैं अपने माथे न लेकर सरकार ही के माथे देता हूं, क्योंकि मैं ऐसा करने के लिए लाचार किया जाता हूं।[1]" मजिस्ट्रेट ने पूछा कि तब तो आप अपना कसूर मानते हैं? महात्माजी ने कहा कि अगर तुम इसीको कसूर कहते हो तो मैं अपना कसूर मान लेता हूं। मजिस्ट्रेट पर सौ घड़ा पानी पड़ गया। अब वह क्या करे? उसने तो सोचा था कि जिरह-बहस आदि में कुछ दिन लगेंगे, तबतक मैं कलक्टर आदि से मिलकर कुछ तय कर लूंगा कि इस मुकदमे में क्या किया जाय? किन्तु गांधीजी ने तो उसकी जड़ ही काट दी। कसूर मान लेने पर तो सिर्फ सजा सुनानी रह जाती है। वह सजा

[1] यह पूरा बयान लेखक की 'चम्पारन का सत्याग्रह' पुस्तक में है।

सुनाये तो क्या ? जो हो, मजिट्रेस्ट ने कुछ दिनों के लिए सजा सुनाना मुल्तवी रखा।

इसी सिलसिले में आपको बतलाऊंगा कि उन्होंने हम लोगों को निर्भय कैसे किया ? दूसरे लोगों के समान हम लोगों को भी भय था कि कहीं गांधीजी को सजा न हो जाय। इसी बीच एक छोटी-सी घटना हुई। दीन-बन्धु एंडरूज़ साहब का नाम आपने सुना होगा। वह अंग्रेज थे और पहले क्रिश्चियन पादरी थे; पर गांधीजी के विचारों से वह इतने प्रभावित हो चुके थे कि उनके भक्त हो गये थे। वह अक्सर गांधीजी से मिला करते थे। एक बार गांधीजी ने उन्हें फिजी द्वीप जाकर वहां के प्रवासी हिन्दुस्तानियों की तकलीफ दूर करने की सलाह और आदेश दिया। फिजी एक द्वीप है, जिसको हमारे ही हिन्दुस्तानी भाइयों ने आबाद किया है। वहां उनकी हालत बड़ी दर्दनाक और शोचनीय है। जहां अन्य देशों में अंग्रेजी राज्य है और जहां हिन्दुस्तानी बस गये हैं, वहां भी हिन्दुस्तानियों को तकलीफ है। जिन दिनों सजा सुनाना मुल्तवी था, उन्हीं दिनों फिजी के लिए प्रस्थान करने के दो-तीन दिन पहले एंडरूजसाहब हम लोगों के पास पहुंच गये। हम लोग उनको रोक रखना चाहते थे, क्योंकि इस हालत में और आगे भी हम लोगों को उनसे बहुत उम्मीद थी। किन्तु एंडरूजसाहब भी आखिर गांधीजी ही के विचार के थे न ! उन्होंने गांधीजी के हुक्म के बिना उन्हींके आदेश से बने हुए पहले प्रोग्राम को तोड़ना पसंद नहीं किया। बहुत मनाने पर भी उन्होंने कहा कि यदि गांधीजी रुक जाने को कहेंगे तो वह रुक सकते हैं। हम लोगों के ब्रजकिशोरबाबू अगुआ थे। हम लोगों ने एंडरूज़साहब को रोक रखने के लिए गांधीजी से अनुरोध किया; किन्तु हम जितना ही ज़ोर देते गये, उतना ही वह कड़े पड़ते गये। उन्होंने कहा कि बने हुए प्रोग्राम को तोड़ना ठीक नहीं; लेकिन जब हम लोगों ने बहुत जोर लगाया तो वह खुलकर बातें करने लगे। उन्होंने कहा, "मैं समझ गया तुम लोगों के मन में डर घुसा हुआ था। इसीलिए तुम लोग मेरी मदद के लिए एंडरूज-साहब को रोक रखना चाहते हो। एक अंग्रेज रहेगा तो तुम लोग उसकी

ओट से काम करोगे कि अंग्रेजी सरकार होने की वजह से कुछ तो मुरौवत मिलेगी ही। इसके अलावा निलहे भी अंग्रेज हैं। उनसे मिलने में भी तुम लोग एंडरूजसाहब की ओट लोगे। मैं समझ गया। अब तो मैं एंडरूज को जरूर ही फिजी भेजूंगा। अंग्रेजों का डर तुम लोगों को अपने मन से जल्द ही निकाल देना होगा।"

उन्होंने एंडरूजसाहब को फिजी चले जाने का फैसला सुना दिया और कहा कि उन्हें जाना ही होगा। कुछ ही समय के बाद दीनबन्धु खबर लेकर आये कि गांधीजी के ऊपर से मुकदमा उठा लिया गया है। मुकदमा तो उठ गया; किन्तु हम लोगों को गांधीजी ने जो पाठ दिया, उसने हमें निर्भय कर दिया।

हम लोगों को ही नहीं, उन्होंने किसानों को भी तरह-तरह से निर्भय बनाया। हम लोग कई वकील गांधीजी के साथ घूमते और काम करते थे। झुंड बांध-बांधकर किसान आते और अपना-अपना हाल सुनाते। हम लोग खूब जिरह करते और सच्ची बातें लिखते। किसान भी सच्ची ही बातें लिखाते थे।

गांधीजी का सभी काम सदा से नियमानुसार हुआ करता था। इसलिए वह जितना काम कर लेते, उतना बहुत कम लोगों से बन पड़ता। उन दिनों भी वह खूब कार्य-व्यस्त रहते। हालांकि हम लोग काम में बहुत घिरे हुए थे और गांधीजी के बिना भी सब काम कर लेने की उम्मीद रखते थे, तो भी हम लोग न तो उनकी बराबरी कर सकते थे और न कर सकते हैं। धरणीधरबाबू एक वकील हैं। वह भी हम लोगों के साथ कुछ किसानों को एक कोने में ले जाकर उनका बयान लिख रहे थे। उन्हींके पास सरकारी हुक्म से पुलिस-दारोगा बैठे थे। धरणीधरबाबू को यह बहुत अखर रहा था। उन्होंने वहां से उठकर दूसरी जगह बयान लिखना शुरू किया। दारोगा वहां भी आ पहुंचे। वकीलसाहब ने तीसरी जगह बदली, वहां भी दारोगासाहब मौजूद! धरणीबाबू से रहा न गया। उन्होंने दारोगासाहब को झिड़क दिया कि वह क्यों इस तरह उनको पिछुआये

चलते हैं ? दारोगासाहब ने गांधीजी से इसकी शिकायत की। गांधीजी ने धरणीबाबू से पूछा कि वहां आपके साथ दारोगाजी ही जा बैठते थे कि और भी कोई ? वकीलसाहब ने कहा कि क्यों, किसान भी बैठते थे। तब गांधीजी ने कहा—"जब उतने किसानों के बैठने से आपको कोई हर्ज नहीं होता है तो सिर्फ एक और आदमी के मिल जाने पर आप क्यों घबराते हैं ? आप दोनों में भेद ही क्यों करते हैं ? ओह, जान पड़ता है, आप दारोगाजी से डरते हैं। उस बिचारे को भी किसानों के साथ क्यों नहीं बैठने देते ?" यह विनोद सुनकर किसान तो निर्भीक हो ही गये, दारोगाजी को काटो तो खून नहीं। लाज से गड़ गये। गांधीजी ने उन्हें मामूली किसानों के बीच गिन दिया। उस दिन से वकीलसाहब तो निर्भय हो गये, किसान भी बिल्कुल निडर होकर निलहों के सामने उनके अत्याचारों का बयान करने लगे।

गांधीजी के मत में भय के लिए जगह ही कैसे हो सकती है ? वहां तो कुछ छिपाकर कहने या करने का बिल्कुल काम ही नहीं। वहां तो मन, वचन और कर्म की एकता है। बेचारे खुफिया पुलिसवाले वहां से किस भेद का पता लगायंगे ? गांधीजी के विचारों के अनुसार जो भी कुछ करते या करना चाहते उनमें किसी तरह के छिपाव की प्रवृत्ति न होनी चाहिए। इसलिए हम लोगों के सामने खुफिया पुलिस का भय खत्म हो गया।

किन्तु महात्माजी कहांतक सब बातों को प्रकाशित करते रहना चाहिए, इसकी भी सीमा रखते हैं, क्योंकि वह तो समन्वय करके चलते हैं। एक उदाहरण से हम लोग समझ जायंगे कि वह खोलकर कहने या न कहने में कैसा सुन्दर समन्वय रखते हैं। जिन दिनों हम लोग चम्पारन में व्यस्त थे और एक धर्मशाला में डेरा डाले हुए थे, उन्हीं दिनों एक रात हम लोग खुली छत पर अगले दिन की दिनचर्या पर बैठकर विचार कर रहे थे। एक साथ बैठकर ऐसा रोज ही कर लिया करते थे। एक सज्जन, जिनके नाम और कृतियों से सब लोग परिचित थे और जिन्होंने हिन्दुस्तान और इस प्रान्त में जागृति लाने में काफी हाथ बंटाया था, एक रात वहां सहसा आ

पहुंचे, और जिस समय हम लोग विचार कर रहे थे उसी समय मिलना चाहा। लोगों ने हम सबसे पूछकर उनसे कहा कि इस समय गांधीजी और लोगों के साथ कुछ मंत्रणा कर रहे हैं। वह जरा तैश में आ गये और उन्होंने कहा कि मैं भी देश का एक सेवक हूं। भला वह कौन-सी बात हो सकती है जो मंत्रणा करते समय मुझसे गुप्त रखी जाय? गांधीजी ने यह सुना तब उन्हें बुला लिया और उनसे पूछा "सुना है, आपको रंज हुआ।" उन्होंने कहा, "क्यों नहीं होता?" गांधीजी ने उत्तर दिया, "अच्छा, आप इस समय हम लोगों के पास बैठकर हमारी क्या मदद कर सकते हैं? आपको क्या मालूम था कि हम लोग किस विषय पर विचार कर रहे हैं? आप यहां आकर हमारे किस काम के होते? फिर आप आते ही क्यों? इसमें आपने बिना समझे ही क्रोध किया है। आपको हम लोगों के साथ काम करना मना नहीं है। आप खुशी से हम लोगों के साथ रहें, हमारी बातें समझें, काम करें और तब राय दें।" उन्होंने अपनी गलती समझ ली और इस तरह गांधीजी ने किसी बात को बिना प्रयोजन असंबंधित व्यक्ति के सामने प्रकट करने की एक सीमा लगा दी। वास्तव में कितना सुन्दर समन्वय है!

महात्मा गांधी की हुई प्रतिज्ञा या संकल्प के पालन करने में बड़े कड़े थे। वह प्रतिज्ञा का पालन करना सब बातों से बढ़कर मानते थे। दूसरे की भी की हुई प्रतिज्ञा टूटती हुई देखकर उनके दिल को जो कड़ी चोट लगती थी, उसका अनुभव करना मुश्किल है। साबरमती-आश्रम महात्माजी के अपार स्नेह और कठिन परिश्रम का फल था। गांधीजी के कारण ही उस आश्रम का जीता-जागता रूप था। यद्यपि उसमें लाखों खर्च करके कई मकान बनाये गए थे, फिर भी उसमें गांधीजी की छोटी कुटिया अपनी सादगी में अलग ही छटा दिखलाती थी। महात्माजी ने उन महलों को तैयार नहीं करवाया था। उनके पास पैसा ही कहां था? यह धनिकों का स्नेह था; किन्तु गांधीजी की झोपड़ियां ही आश्रम की कला को सजीव कर रही थीं। उन दिनों गांधीजी स्वयं पाकशाला में जाते, नियमानुसार ठीक समय पर सामूहिक प्रार्थना आदि होती, जो आज भी

अत्यन्त नियमित रूप से होती है। सन् १९३० के सत्याग्रह के समय जब वह डांडी-यात्रा के लिए निकले तो उनके मन में एक बात आई और उन्होंने कहा कि मैं स्वराज्य-प्राप्ति के लिए जाता हूं। अब स्वराज्य लेकर ही साबरमती-आश्रम लौटूंगा, अन्यथा नहीं। भगवान ने उनकी वह पवित्र कामना उस समय पूरी नहीं की, और उन्होंने अपने प्रेमामृत से सींचे हुए उस साबरमती-आश्रम में अबतक कदम नहीं दिया। यह तो एक छोटी-सी मिसाल हुई।

दूसरी लीजिये। उड़ीसा में अकाल पड़ने पर जब वहां के लोग अन्न-वस्त्र के बिना मरने लगे तो सब लोगों का ध्यान उस ओर गया। वह अकाल आज का-सा अकाल नहीं था। गांधीजी वहां के लोगों की असली हालत का पता लगाने गये। उन्होंने वहां का जो करुणाजनक दृश्य देखा, वह आज भी कल्पना के नेत्रों में आते ही आंसू फूट पड़ते हैं। गांधीजी ने वहां वस्त्र की बड़ी कमी देखी। सहसा उनके शुद्ध हृदय को ऐसा लगा कि जब भारत की इतनी जनता इतने कम कपड़े पहन पाती है तो उन्हें अधिक कपड़े पहनने का क्या अधिकार है? गांधीजी ने लंगोटी धारण की। कम वस्त्र पहनने की प्रतिज्ञा ले ली। अनेक अवसर आये, पर वह अडिग रहे।

गांधी-अरविन-सुलहनामे के समय महात्माजी वही लंगोटी पहने बड़े लाट के राजभवन में जाया करते थे। उनकी नियमितता का अच्छा उदाहरण यहां भी मिलता है। एक दिन बातचीत करते हुए कुछ अधिक समय हो गया। भोजन का वक्त आ गया। बड़े लाट का भोजन तो उन्हें स्वीकार नहीं हो सकता था। फोन आया। गांधीजी का भोजन वहीं भेज दिया गया। गांधीजी ने खाया और कुछ देर वहीं लेट रहे। फिर बातचीत शुरू की।

दूसरी गोलमेज-परिषद् में सरकार की ओर से गांधीजी से बहुत आग्रह किया गया कि उन्हें वहां जरूर जाना चाहिए। इंग्लैण्ड सर्द देश है; किन्तु चढ़ी लंगोटी उतर कैसे सकती थी? यहीं तक नहीं, बादशाह की पार्टी में बुलाहट हुई। वहां जाने के लिए खास तरह की पोशाक और

जूते आदि पहनने के बड़े कड़े नियम हैं। ऐसे नियम तो बड़े लाट की पार्टियों म शरीक होने के भी हैं। अंग्रेजों के यहां तो भिन्न-भिन्न अवसरों के लिए अलग-अलग पोशाक नियत है। फिर बादशाह की पार्टी का तो कहना ही क्या! वहां तो बड़े नियम बने थे; किन्तु लंगोटी की प्रतिज्ञा तो भौतिक साम्राज्य के नियमों से भी कई गुनी कड़ी थी, कैसे टूटती? लंगोटी धारण किये गांधीजी वहां भी सिर्फ चादर ओढ़े ही गये। उनके लिए वहां के नियमों की रुकावट नहीं हुई।

गांधीजी यद्यपि सभी लोगों का पूर्ण विश्वास करते थे, तथापि विचारों की सफाई के मामले में वह बड़े तर्क-परायण थे। वह छोटी-छोटी बातों पर भी अड़ जाते, तो तर्क करने लगते थे और किसी विषय के संबंध में अगर कोई अपना ही विचार मनवा लेने के लिए जोर लगाता रहता तो वह और भी दृढ़ हो जाते थे। नमक-सत्याग्रह के समय जब सत्याग्रह के लिए रवाना हो रहे थे तो हम लोगों में से बहुतों ने महात्माजी का अन्तिम सन्देश रेकार्ड करवाकर देश के शहरों और गांवों में सहज ही प्रचलित करने की बात सोची। मुझसे इसके लिए कोशिश करने को कहा गया। लोगों का विश्वास था कि मेरा कहना गांधीजी अधिक सुनते हैं, शायद सुन लें। हम लोगों का एक तरह का डेपुटेशन गया; किन्तु हम लोग ज्यों-ज्यों अनुरोध करते गये, गांधीजी अड़ते गये। जब हम लोगों ने बहुत जोर लगाया तो उन्होंने कहा कि मुझे अपनी ध्वनि में अपना सन्देश रेकार्ड करवाकर नहीं फैलाना है। यदि मेरे सन्देश में सत्य है तो वह बिना रेकार्ड के ही घर-घर पहुंच जायगा, और अगर इसमें सत्य नहीं है तो इसे एक कान से दूसरे कान तक जाने की कोई जरूरत नहीं। हम लोग समझ गये।

किन्तु गांधीजी हठीले भी नहीं थे। उनका तो सारा जीवन ही सत्याग्रह था। वह खुद नहीं कह सकते कि उनके जो विचार थे बाद में भी वैसे ही रहेंगे। अपने विचारों और कामों में कोई गलती निकलते ही वह झट उस महसूस करके जाहिर कर देते थे और अपनेको सुधार लेते थे। इन्हीं कारणों से उन्होंने अपने सिद्धान्तों की कोई पुस्तक

नहीं लिखी। एक बार मैंने उनसे कहा भी था कि स्कूली पुस्तकों की भांति अपने मोटे-मोटे सारे विचारों को कहीं छोटी-सी पुस्तक के रूप में लिख देते तो बड़ा अच्छा होता। उन्होंने यह स्वीकार नहीं किया और कहा— "यह काम मेरा नहीं है, और न मैं कर ही सकता हूं, क्योंकि मैं तो हमेशा ही सत्य के प्रयोग करता रहता हूं, नित्य-नई आगे आनेवाली समस्याओं को मैं सत्य की कसौटी पर कसता रहता हूं। इसमें कुछ भूल की संभावनाएं बनी रह जाती हैं। उनमें कल ही कुछ सुधार हो सकता है। कहो, फिर मैं इस तरह कोई पुस्तक कैसे लिख सकता हूं?" इस तरह महात्माजी सत्य ही की पूजा करते थे, सत्य ही के लिए जीते थे और उनका सारा जीवन सत्य ही का तप था।

सत्य और अहिंसा दो नहीं हैं, एक ही चीज के दो पहलू हैं अथवा यों भी मान लें कि अहिंसा सत्य में विलीन है। यहां मैं अहिंसा की कोई विशेष अथवा सूक्ष्म व्याख्या नहीं करना चाहता हूं। साधारण रीति से भी हिंसा और अहिंसा पर हम विचार करें तो आज आप घोर हिंसा का जो नतीजा यूरोप में और दूसरी जगह देख रहे हैं, उससे कह सकते हैं कि ये लोग एक-से-एक बढ़कर भयानक औजार का प्रयोग करके भी शांति नहीं पा सकते। यदि दुनिया को शांति चाहिए तो वह अहिंसा ही से मिल सकती है। यदि उसे वे लोग नहीं अपनायंगे तो आपस में लड़कर खत्म हो जायंगे। यदि इस लड़ाई को भी कोई अपनी भयंकर हिंसा से जीतता है तो इससे बढ़कर कितनी-ही भयंकर लड़ाइयां और होंगी तथा सारे हिंसक लड़ते-लड़ते सिर्फ खुद ही बर्बाद नहीं होंगे, बल्कि अहिंसा को नहीं अपनाया तो दुनिया को एक लाख वर्ष पीछे घसीटकर जंगलिस्तान बनाकर छोड़ेंगे। आप इस लड़ाई में ही सबका सत्यानाश देख सकते हैं। मुझे तो हर तरह से अहिंसा ही में कल्याण मालूम पड़ता है और मैं पूरी आशा करता हूं कि दुनिया को एक-न-एक दिन अहिंसा को ही अपनाना होगा।

महात्माजी बहुत बड़ी-बड़ी बातें बहुत थोड़े में कह डालते थे।

आपने सुना होगा कि प्राचीन ऋषि छोटे-छोटे सूत्रों की रचना कर बड़ी-बड़ी बातें उनमें भर देते थे। गांधीजी के साथ भी यही बात थी। वह भी सूत्रकार थे। उदाहरण के लिए वह कह देते हैं—"चरखा चलाओ।" इस चरखा चलाने में क्या-क्या बातें हैं, यह क्या चीज है, इसे क्यों चलायें, इत्यादि बहुत-सी बातें हैं, जिनपर बहुत ज्यादा कहा जा सकता है और जिसके भीतर बड़ी-बड़ी बातें निहित हैं। इसी तरह अपने रोजमर्रा के अथवा देश के दूसरे कार्यों में भी वह छोटे-छोटे वाक्यों में इतनी बड़ी बातें भर देते थे और उनका इतना विस्तार हो सकता है कि आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। भारतवर्ष की सभ्यता के महात्माजी प्रतीक हैं। अमरीकन विद्वान ग्रेग, जो गांधीजी के विचारों के बहुत कायल हैं और जिन्होंने उनपर अच्छी-अच्छी पुस्तकें लिखी हैं, एक बार जब बिहार के कुछ गांवों में घूमे और साधारण घरों में भी रहनेवाली लोढी, पाटी, ओखल, जोता इत्यादि देखा तो दंग रह गये। उन्होंने कहा—"वाह, यहां के लोग तो आटा हाथ से पीस लेते हैं, चावल छांटते और मसाले तैयार कर लेते हैं। मैं तो एक नई ही दुनिया में आ गया हूं। यह सब तो मैंने अपने देश में कहीं नहीं देखा।" वह बहुत ही खुश हुए, यहांतक कि उन्होंने कह डाला कि यदि हिन्दुस्तान के लोग पचास वर्ष तक और इन चीजों को कायम रखेंगे तो सारी दुनिया मुग्ध होकर इन्हें जरूर अपनायगी। अब आप समझ सकते हैं कि महात्माजी सारी उपयोगी कलाओं को बस्ती-बस्ती, घर-घर क्यों बिखेर देना चाहते थे? और वह घरेलू उद्योगों के पक्ष में क्यों थे?

यों तो गांधीजी के विचारों को हम दार्शनिक रूप भी दे सकते हैं। देश और विदेश के कुछ विद्वान विचारकों ने उन्हें गांधी-दर्शन या गांधी-तत्वज्ञान का भी रूप दिया है, मगर हम उन विचारों को छोटी-छोटी बातों में भी खूबी के साथ पाते हैं।

सचमच गांधीजी के विचार तो जीवन की छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी बातों में समान रूप से बिखरे हुए हैं। वह सबके लिए सुलभ

और सहज है; किन्तु वे इतने अधिक हैं कि अबतक न उनका संग्रह हो सका है और न पूरा प्रचार ही।[1] इस काम को बहुत थोड़े लोग कर सकते हैं। महादेवभाई देसाई ऐसे आदमी थे, जिन्हें गांधीजी का नजदीक से परिचय था और जो इस काम को कमाल के साथ कर सकते थे; किन्तु ईश्वर की न जाने क्या इच्छा थी कि गांधीजी से पहले ही उनका दीप-निर्वाण हुआ। एक आदमी और हैं, वह हैं किशोरलालभाई मशरूवाला। वह चाहें तो लिख सकते हैं, किंतु वह भी काफी वयोवृद्ध और अस्वस्थ हैं।[2] दूसरी बात यह है कि गांधीजी की कृतियां 'यंग इण्डिया' आदि कितने ही पत्रों की पुरानी फाइलों में हैं, जो आज प्राप्य नहीं या मुश्किल से मिल सकती हैं। फिर भी उन फाइलों की खोज और अध्ययन कर महात्माजी के विचारों को एकत्रित करना हम लोगों का काम है।

समय के गांधीजी इतने पाबन्द थे कि घड़ी रखी रहेगी और इंग्लैण्ड, अमरीका या कहीं से भी कोई मिलने आये हों, पर मिलने के लिए जितने मिनट का समय मुक़र्रर हुआ है उसके बीतते ही वह माफी मांग लेंगे, और कैसी भी आवश्यकता हो, दूसरा समय मुक़र्रर करने को कहकर अपनी दिनचर्या में लग जायंगे।

कुछ लोग गांधीजी में मेरी या औरों की अन्ध-श्रद्धा और अन्ध-विश्वास की बात कहते हैं। हां, मैं भी कहता हूं कि उनमें मेरी अन्ध-श्रद्धा क्यों न हो? मेरी अन्ध-श्रद्धा योंही नहीं हो गई। वह तो तजुर्बे का फल है। कितनी-ही मरतबा उनके और मेरे विचारों में काफी भेद रहा है; किन्तु पीछे चलकर मैंने महसूस किया है कि उनके ही विचार ठीक थे। ऐसा बहुत बार हुआ है। इसलिए अब तो मैं उनके विचारों को झट मान लेना ही अपना कर्तव्य समझता हूं। ऐसा मैं क्यों नहीं समझूंगा? मेरा सौभाग्य है कि मैं उनके साथ रहा हूं, उनकी छाया और कृपा पाकर निहाल हुआ हूं। मुझे तो पूरी आशा है कि गांधीजी का सन्देश अमर रहेगा।

---

[1] बाद के वर्षों में गांधीजी की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

[2] किशोरलालभाई भी अब नहीं रहे।

२

गांधीजी के सिद्धांत

महात्मा गांधी के बारे में मिली-जुली छोटी-मोटी बातें हम बता चुके हैं। अब हम उनके कुछ मोटे-मोटे सिद्धान्तों को उनके जीवन और कार्यों में देखते चलें। यों तो उन्होंने अपने सिद्धान्तों को बहुत दिन पहले ही, जब उन्होंने हिन्दुस्तान की राजनीति में हाथ भी नहीं बटाया था, बहुत-कुछ स्थिर कर लिया था और उनके अनुकूल दक्षिण अफरीका में सत्याग्रह ही नहीं किया था, अपितु काफी कामयाबी भी हासिल की थी; किन्तु भारतवर्ष में आने पर जब उन्हें यहां की समस्याओं का सामना करना पड़ा तो उन्होंने कितनी कड़ाई और ईमानदारी के साथ उनका पालन किया, यह उदाहरणों से देखने और समझने लायक है।

अफरीका से हिन्दुस्तान आने पर १९१५ ई० से जब गांधीजी ने जन्मभूमि की ओर अपनी दृष्टि फेरी तो पहले श्री गोखले ने उनसे वचन ले लिया कि जबतक हिन्दुस्तान की हालत घूम-घूमकर अच्छी तरह समझ न लो, तबतक अफरीका में किये अपने प्रयोगों को यहां कहीं भी शुरू करने की जल्दबाजी न करो। गांधीजी ने उनकी शर्त मान लीं। इसलिए उनका पूरा-पूरा पालन करते हुए सन् १९१५-१६ में वह देश के भिन्न-भिन्न भागों में घूमते रहे और स्थिति का पता चुपचाप लगाते रहे। उनका यह भ्रमण एक तरह का अज्ञात भ्रमण था, हालांकि जो लोग जहां-जहां जानते थे, कुछ-न-कुछ स्वागत जरूर करते थे। गोखले को दिये वचन का पूरा-पूरा पालन करते हुए गांधीजी किसी आश्रम की आवश्यकता महसूस

करने लगे, जहां रहकर वह अपने विचारों पर अमल करने की कोशिश करते। सन् १९१६ के अन्त में आश्रम का निश्चय हो गया। यह साल कांग्रेस के इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है, क्योंकि इसी साल दिसम्बर के महीने में लखनऊ-कांग्रेस हुई थी। कांग्रेस में नरम दल और गरम दल मिलकर एक हो गये। सन् १९०७ में इन दो दलों के रूप में कांग्रेस का जो अंग-भंग हुआ था, उसके लखनऊ-कांग्रेस में एक हो जाने के कारण इस अधिवेशन में लोगों की उपस्थिति बहुत ज्यादा थी। बहुत ज्यादा का मतलब आजकल के अर्थों में न करें। आजकल तो चार-पांच हजार की भीड़ मामूली सभाओं में भी हो जाया करती है; किन्तु उन दिनों साधारण सभाओं में चार-पांचसौ की भीड़ काफी समझी जाती थी। कांग्रेस में दस-पांच हजार की उपस्थिति ही बहुत ज्यादा थी। हम बता चुके हैं कि श्री राजकुमार शुक्ल और श्री ब्रजकिशोरबाबू ने चम्पारन की तकलीफें गांधीजी को वहीं सुनाई थीं; किंतु गांधीजी तो फूंक-फूंककर कदम रखते थे। उन्हें तो सत्य के बिना एक कदम आगे बढ़ना नहीं था। उन्होंने कहा कि मैं स्वयं चम्पारन जाकर सारी स्थिति समझे बिना ये बातें सच नहीं मान सकता हूं। आश्रम खोलने की तारीख भी तय हो चुकी थी। गांधीजी ने सोचा था कि चम्पारन की स्थिति को पांच-छः दिनों में समझकर ठीक तारीख पर चला जाऊंगा; किन्तु जब वह चम्पारन आये तो उन्होंने यहां की स्थिति देखकर यहीं ठहर जाना ठीक समझा। नियत तिथि को तार दे दिया गया कि आश्रम खोल दो। लोगों ने उनकी अनुपस्थिति में ही आश्रम खोल दिया। फिर उनपर चम्पारन में किस तरह मुकदमा चला, इसका हाल आप सुन चुके हैं। उस समय हिन्दुस्तान के वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्ड थे। वह गांधीजी की कदर करते थे। उन्हींके हुक्म से गांधीजी पर से सरकारी मुकदमा उठा लिया गया।

उस समय गांधीजी का पहले ही से अंग्रेजों के प्रति और अंग्रेजों का गांधीजी के प्रति परस्पर-विश्वास था और वे एक-दूसरे को मित्र की नजर से देखा करते थे। गांधीजी की लड़ाई में यही तो खूबी है कि वह जिसके

खिलाफ लड़ी जाती है, उसके हार जाने या आर्थिक नुकसान उठाने पर भी वह उनका मित्र बना रहता है।

जब बिहार के उस समय के लाट सर एडवर्ड गेट से चम्पारन के संबंध में गांधीजी का मिलना तय हुआ तो हम लोगों को कुछ आशंका हुई कि कहीं गांधीजी गिरफ्तार न कर लिये जायं और हम लोगों का काम पड़ा न रह जाय। इसलिए गांधीजी ने हम लोगों से कह दिया था कि अगर मैं गिरफ्तार भी कर लिया जाऊं तो अमुक तरह से काम करना। उन दिनों छोटे लाट रांची में रहते थे। ब्रजकिशोरबाबू के साथ गांधीजी रांची गये, पर वहां पहुंचकर १० बजे लैफ्टिनेंट गवर्नर से अकेले मिलने गये। ब्रजकिशोरबाबू डेरे पर ही रहे। वहां वह, और यहां हम लोग यही समझ रहे थे कि गवर्नर से बातचीत बहुत-से-बहुत एक-डेढ़ घंटे होगी, पर वहां तो पांच-छः घंटे तक बातचीत होती रही। इधर हम लोगों ने सोचा था कि अगर बातचीत तय हो जायगी तो तार से शीघ्र ही खबर पा जायंगे, किन्तु दिनभर और रातभर इन्तजार करते रहे, कोई तार नहीं मिला। हम लोग सोचते थे कि कहीं गिरफ्तार तो नहीं कर लिये गए। दूसरे दिन तार आया कि कल बहुत-सी बातें हुई और आज फिर होंगी। गांधीजी ने अपने तर्कों से गवर्नर को यह समझा दिया कि चम्पारन का मसला जांच करने लायक है। गवर्नर ने जांच-कमेटी बनाकर उसमें गांधीजी को भी रहने को कहा। पहले तो गांधीजी उसमें नहीं रहना चाहते थे, मगर जब गवर्नर ने कहा कि आप कमेटी में रहेंगे तभी हम आपको दिखा सकेंगे कि १०० वर्षों से गवर्नमेंट के अफसरों ने हिन्दुस्तानी भाइयों के साथ कैसा वर्ताव किया है। यदि आप जांच-कमेटी में नहीं रहेंगे तो रिपोर्ट आपको नहीं दिखाई जा सकेगी। इसलिए आपका भी रहना जरूरी है। गांधीजी रह गये। फिर जांच शुरू हुई; किन्तु हम सभी लोगों से गांधीजी ने वचन ले लिया था कि तुम लोगों में से कोई भी जांच की हुई बातों के विषय में न तो कोई भाषण देगा, न कुछ समाचार-पत्रों में लिखेगा। उसके संबंध में बोलने का अधिकार गांधीजी को ही था। इसके यह मानी नहीं कि हम लोग

किसानों से भी कुछ नहीं बोलते थे। उनसे बातचीत और जिरह तो खूब करते थे। मगर निलहों के अत्याचार के विषय में कोई भाषण नहीं देते थे। जांच खतम होने पर कमेटी ने सरकार को रिपोर्ट दी। गवर्नमेंट ने उसके अनुसार कानून बना देने का वचन दिया। कानून बना भी, जिसके कारण आज वे कोठियां उजड़ गईं। किन्तु सबकुछ होने पर भी कुछ निलहे गांधीजी के मित्र बने रहे।

गांधीजी शुरू से हिन्दुस्तान में अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति के विरोध में थे। उन्होंने चम्पारन में राष्ट्रीय शिक्षा के कुछ केन्द्र खोलने चाहे। कुछ खोले भी गये, जिनमें गुजरात और महाराष्ट्र से शिक्षक और शिक्षिकाएं आकर कुछ वर्षों तक काम करते रहे। उन स्कूलों को चलाने के लिए गांधीजी ने कई निलहे साहबों से भी मदद पाई। इस तरह गांधीजी की जीत में हम सत्य की ही जीत देखते हैं, और वह जीत ऐसी है कि निलहे घाटा उठाकर भी गांधीजी के मित्र बन गये। इन कार्यों में गांधीजी का कांग्रेस से कोई संबंध न रहा।

इसी बीच गुजरात में खेड़ा-सत्याग्रह का संचालन करने गांधीजी जा डटे थे। वहां किसानों के साथ सरकार लगान का बन्दोबस्त अपने ही हाथों करती है। वहां जमींदारी-प्रथा नहीं है। बिहार में जिस तरह खास महाल की जमीनें हैं, कुछ उसी तरह की भूमि-व्यवस्था वहां भी है। किन्तु नियमानुसार शायद २० वर्षों पर लगान का नया बन्दोबस्त होता है। इस बार सरकार ने मालगुजारी इतनी बढ़ा दी थी कि किसानों में बड़ा असंतोष हो गया था। जो हो, गांधीजी के परिश्रम से खेड़ा की समस्या आसानी से हल हो गई।

अब मैं तीन उदाहरण देकर बताऊंगा कि अपने अटल सिद्धान्त अहिंसा के पालन में कमी पाते ही गांधीजी ने किस तरह बराबर आन्दोलनों को स्थगित कर दिया। अर्थात आन्दोलनों के जरिये लाभ उठाने से बढ़कर वह अहिंसा का पालन ज्यादा जरूरी समझते थे। सन् १९१८ के ११ नवम्बर को यूरोपीय महायुद्ध समाप्त हो गया। इस साल गांधीजी बीमार थे;

किन्तु इसके पहले ही से युद्ध होने के कारण 'भारत-रक्षा-कानून' जैसी बहुत-सी धाराएं लागू थीं, जिनके कारण सरकार जिसको चाहे पकड़-कर रख सकती थी। उन दिनों बंग-भंग के बाद से दूसरे ही ढंग के क्रान्ति-कारी जहां-तहां अंग्रेजों और सरकारी अफसरों की हत्या इत्यादि किया करते थे। ऐसी घटनाएं प्रायः होती रहती थीं और १९१८ तक बहुत हो चुकी थीं। इन सबकी जांच करके इनके रोकने के निमित्त संविधान में नई सूझ पेश करने के लिए रोलट-कमीशन की नियुक्ति हुई। रौलट साहब इंग्लैण्ड के एक जज थे। उनके सुझावों के अनुसार जो रौलट-बिल तैयार हुआ, उसमें युद्ध के समय काम में लाई जानेवाली 'भारत-रक्षा कानून'-जैसी धाराओं को शांति के समय भी लागू रखने की जरूरत बताई गई। लोगों में खलबली मच गई। गांधीजी के अच्छा होते ही यह विरोध बढ़ा। महात्माजी ने 'यंग इण्डिया' नामक पत्र का संपादन शुरू किया। उन्होंने देश का भ्रमण नहीं किया। अहमदाबाद में बैठे-बैठे ही वह लेख-पर-लेख लिखने लगे। सारे देश में एक लहर फैल गई; लेकिन याद रहे, गांधीजी के इस काम में कांग्रेस का हाथ नहीं था। सन् १९१८ के दिसम्बर से ही आन्दोलन शुरू हो गया। महात्मा गांधी ने ६ अप्रैल सन १९१९ को रौलट-एक्ट के विरोध में देशव्यापी हड़ताल करने की घोषणा की; किन्तु ठीक तारीख सब जगह मालूम नहीं हो सकी। इसलिए देश के कई स्थानों में एक सप्ताह पहले ही हड़ताल कर दी गई। ऐसा इसलिए भी हुआ कि महात्माजी ने दिन रविवार तय किया था; किन्तु तारीख ६ अप्रैल वाले रविवार को हड़ताल मनाई गई। देश में यह एक अनोखा अवसर और चीज थी। जनता में नई जागृति अपूर्व रूप में नजर आती थी। हिन्दू-मुसलमान मिले थे। दिल्ली हमारे देश की राजधानी अब भी है और उस समय भी थी। वहां ३० मार्च को ही सफल हड़ताल हुई। सरकार की ओर से काफी इन्तजाम था। गोली चली, कितने ही लोग मरे और घायल हुए। बहाना वही पत्थर फेंकने का, जोकि सरकार हमेशा ही किया करती है। महात्माजी को जब यह खबर मिली तो उन्होंने

दिल्ली जाकर वहां के लोगों को शांत करने के लिए प्रस्थान किया। साथ में महादेवभाई भी थे।

उस बार पटन में भी बड़ी सफल हड़ताल हुई थी। सिर्फ एक बड़ा दुकानदार दुकान बन्द नहीं करता था; किन्तु टोपी पैर पर रखते ही दुकान बन्द कर क्षमा मांगने लगा। गांधीजी दिल्ली से चार-पांच स्टेशन दूर ही थे कि उन्हें बताया गया कि वह दिल्ली नहीं जा सकते। गांधीजी तो इसे माननेवाले न थे। इसलिए उन्हें गिरफ्तार करके अकेले न जाने किस गाड़ी से किधर ले जाया गया। स्वर्गीय महादेवभाई देसाई ने मुझे तार किया कि "गांधीजी को तो न मालूम कहां ले जाया गया है, शीघ्र आओ, विचार किया जाय, अब क्या करना होगा? मैं बम्बई जा रहा हूं। तुम भी वहीं आओ।" मैं तार पाते ही वहां के लिए रवाना हुआ। मालूम हुआ कि गांधीजी को बम्बई ले जाया गया था और वहां से वह अहमदाबाद चले गये। उस समय अहमदाबाद में बलवे हो रहे थे। मैं अहमदाबाद के लिए रवाना हुआ। वहां जंगी कानून जारी था। मैं तांगा कर गांधीजी के पास गया; लेकिन शांति हो चुकी थी। मार्शल लॉ उठा लिया गया। तबतक पंजाब से हिंसा की खबरें आ पहुंची। लोगों ने कुछ अंग्रेजों को मार तक डाला था और कितनों ही को घायल कर दिया था। महात्माजी ने सोचा कि यह तो अहिंसा की लड़ाई नहीं रही। यद्यपि लोगों में काफी उत्साह था, फिर भी गांधीजी अहिंसा की बातें करते थे, जिनके कहने से सरकार इन्हें किसी तरह रोक न सकती थी। किन्तु हिंसा बढ़ने से सरकार का विश्वास उठना तो मामूली बात थी। गांधीजी के दिल को बड़ा धक्का लगा। यह स्थिति उनके लिए असह्य थी। यद्यपि इससे पहले उन्होंने बार-बार सरकार को यह चेतावनी दी थी कि अगर रौलट बिल पास हो गया तो उन्हें हड़ताल-प्रदर्शन के बाद सत्याग्रह करना होगा, फिर भी हिंसा-कांड हो जाने से गांधीजी ने सत्याग्रह स्थगित कर दिया। रौलट साहब की सिफारिश से दो बिल पेश किये गए थे। एक तो पास हो चुका था; पर इस आंदोलन के बाद सरकार ने दूसरे को स्थगित कर दिया। पंजाब में हत्याकांड के बाद अंग्रेज

अधिकारी घोर दमन करने लगे। सन् १९१९ की १३ अप्रैल को अमृतसर के जलियांवाला बाग की बड़ी मीटिंग में, जहां बच्चे, बूढ़े और स्त्रियां सब थे, गोलियों की वर्षा की गई। छोटे-छोटे बच्चे तक गोली से उड़ा दिये गए। पंजाब के कितने ही शहरों में डटकर गोलियां चलाई गई। कितने ही गांवों में जाकर गोले बरसाये गए। अमृतसर की एक सड़क पर लोगों को रेंग-रेंग-कर चलना पड़ता था।

गजब की बात तो यह थी कि उस कांग्रेस की सालाना बैठक भी पंजाब के अमृतसर ही में होनेवाली थी। एक-दो महीनों तक तो पंजाब के हत्याकांड की खबर कहीं फैलने न दी गई। पंजाब की ओर से आने-जाने के टिकट-तार-चिट्ठियां सब-कुछ बन्द रखे गये; किन्तु सच्ची बात छिपाये नहीं छिपती। ज्यों-ज्यों खबरें फैलती गईं, देश क्षुब्ध होने लगा। सभी बातों की जांच करने के लिए विलायत के दूसरे जज हंटर साहब कमीशन लेकर आये। जांच शुरू हुई और उसकी खबरें अखबारों में प्रकाशित होती जाती थीं। गैर-सरकारी जांच भी कांग्रेस-कमेटी की ओर से शुरू हुई। अखबारों में प्रकाशित होनेवाली बातों को तो कांग्रेस-कमेटी लेती ही थी, उनके अलावा भी उसको और बातें मालूम होती थीं। उस साल की कांग्रेस पं० मोतीलाल नेहरू के सभापतित्व में अमृतसर में हुई।

उन दिनों खिलाफत के कारण मुसलमान बेतरह बिगड़े हुए थे। उनमें बहुत जोश था। गांधीजी अहिंसा का पालन कितनी शांति से करने के पक्ष में थे, इसे दिखाने के लिए दूसरा उदाहरण देता हूं। उस समय नये संविधान के अनुसार नई कौंसिल के चुनाव का प्रश्न आया; किन्तु सन् १९२० के सितम्बर के कलकत्तावाले कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में असहयोग का प्रस्ताव पास किया गया, जिसका एक अंग कौंसिल का बहिष्कार भी था। वोटरों को वोट देने से मना किया गया। कोई भी कांग्रेसी उम्मीदवार खड़ा नहीं किया गया। जिन लोगों को अवसर से लाभ उठाना था और कौंसिल जिनके लिए अनमोल चीज थी, ऐसे लोग गये। किन्तु

सरकार में भी उनकी कोई इज्जत नहीं थी, क्योंकि वे जनता के सच्चे प्रतिनिधि नहीं समझे जाते थे। यह साल कांग्रेस के इतिहास में बड़े मार्के का है। अबतक तो लोग सिर्फ प्रस्ताव पास करके रह जाते थे; किन्तु अब गांधीजी ने सारे देश को समझा दिया कि यह सरकार वास्तव में हमारी ही मदद से हमपर हुकूमत करती है। उन्होंने सारी जनता में प्राण फूंक दिये। असहयोग के इस अस्त्र को सभीने विश्वास के साथ देखा। गांधीजी ने असहयोग के चार मुख्य प्रोग्राम रखे :

१. सरकारी स्कूलों और कालेजों को छोड़ देना।
२. सरकारी कचहरियों को छोड़ देना।
३. सरकारी उपाधियों का त्याग करना।
४. कौंसिलों का बहिष्कार करना।

इसके अलावा यह भी सोचा गया था कि यदि आवश्यकता हुई तो हम कानून भी भंग करेंगे और कर देना भी बंद कर देंगे। यह तो असहयोग-आंदोलन का विध्वंसक रूप था; किन्तु इसके साथ ही गांधीजी ने रचनात्मक प्रोग्राम भी दिये। हिन्दू-मुस्लिम एकता तो सबका आधार ही थी। विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार करके चरखा चलाने और खद्दर पहनने का प्रचार किया गया। कचहरियों में जाना छोड़कर गांव-गांव में पंचायतें कायम करने का प्रोग्राम दिया गया, जिसके अनुसार कितने ही गांवों में पंचायतें बनीं और मुकदमे फैसल होने लगे। स्कूल और कालेजों की जगह बहुत-से विद्यालय और विद्यापीठ खोले गये। कुछ सरकारी स्कूल ही राष्ट्रीय विद्यालय में परिणत हो गये।

सन् १९२० के दिसम्बर में नागपुर-कांग्रेस ने गांधीजी के असहयोग-आंदोलन के प्रोग्राम की मंजूरी पक्की कर दी; किन्तु गांधीजी उसी जगह से सत्याग्रह शुरू करना चाहते थे, जो उनकी कई शर्तें पूरी कर दिखाये। उन में मुख्य ये थीं—कोई स्कूल-कालेज न जाय, कचहरियों का पूर्ण बहिष्कार रहे, मद्यपान बिल्कुल न हो, सभी लोग खद्दर पहनें और हिन्दू-मुस्लिम एकता रहे। गांधीजी ने इन शर्तों के साथ बारडोली को सत्याग्रह के लिए

तैयार करना शुरू किया। इसका कारण यह था कि बारडोली के कई आदमी दक्षिण अफरीका से ही उनके प्रोग्रामों को जानते-समझते थे तथा उन्होंने उनमें भाग भी लिया था। १९२१ के साल में समूचे देश में ज़ोरों से प्रचार का काम हुआ। देश ने पूरी मुस्तैदी दिखाई। कितनी ही बस्तियों में पंचायतें कायम हुईं। सभाएं तो असंख्य हुईं। ऐसे अवसर पर लोगों में राज-भक्ति लाने के लिए ब्रिटेन के युवराज को भारत भेजने की बात चल रही थी। कांग्रेस ने इसका ज़ोरदार विरोध किया। असहयोग की गति और भी तेज़ हो गई। समूचे देश में बड़ी-बड़ी सभाएं हुईं। आश्चर्य की बात थी कि लोगों ने नशीली चीजें आप-से-आप छोड़नी शुरू कीं। हिन्दू-मुसलमान एक होकर असहयोग कर रहे थे। इसलिए उस साल बकरीद के अवसर पर गाय की कुर्बानी करीब-करीब नहीं हुई। मुसलमान भाइयों के मज़हब में यह बात लिखी है कि अगर कोई दूसरे धर्म का आदमी किसी मज़हबी काम में बाधा दे तो उसे वे जरूर करें। इसलिए हिन्दुओं ने गाय की कुर्बानी बन्द-कराने के लिए प्रचार नहीं किया। गांधीजी तक ने इतना ही कहा कि मुसल-मान भाई खुद गौ की रक्षा करेंगे। यह उनका भी काम है। एकता के कारण मुसलमान भाइयों ने खुद समझा कि इससे हिन्दुओं का दिल दुखता है और वे स्वयं ही इसका प्रचार करने लगे। सैकड़ों पीछे एक-दो जगह कुर्बानी हो गई हो तो हो गई हो। युवराज १९२१ के नवम्बर में आये। देश ने उनके स्वागत का जबर्दस्त बहिष्कार किया; किन्तु बम्बई में उनके उतरते ही जब पूरी हड़ताल थी और कुछ पारसियों तथा सरकारी लोगों के सिवा कोई स्वागत करने नहीं गया, तो स्वागत करके जो पारसी भाई आ रहे थे, उनपर हिन्दू-मुसलमान बेतरह टूट पड़े और उन्होंने भयंकर हिंसा की। गांधीजी ने ऐसे अवसर पर, जबकि युवराज देशभर में घूमनेवाले थे, हिंसा के भय से सत्याग्रह बन्द कर दिया।

किन्तु देश के कोने-कोने में युवराज का सफल बहिष्कार हुआ, जिसके कारण सरकार सभी जगह दमन करने और नेताओं को जेलों में भरने लगी। इसी बीच नई कौंसिल को खुश करने के लिए 'रौलट एक्ट' रद्द कर दिया

गया। सच पूछिये तो वह पहले ही रद्द हो चुका था, क्योंकि सरकार उसको कभी काम में नहीं ला सकी। जो हो, सन् १९२१ के दिसम्बर में अहमदाबाद-कांग्रेस ने गांधीजी को यह अधिकार दिया कि जहां से चाहें, सत्याग्रह शुरू करें। गांधीजी ने बारडोली में सत्याग्रह करने का निश्चय किया। इसकी सूचना उन्होंने वाइसराय को भी अपने पत्र में दी। पत्र काफी लम्बा था और उसमें कई बातों का जिक्र था। पत्र लिखने के कुछ ही दिनों बाद गोरखपुर जिले के चौराचौरी नामक स्थान में भयंकर बलवा हो गया। लोगों ने पुलिस के बहुतेरे आदमियों को जिन्दा जला दिया। थाने का जलाना तो मामूली बात थी। यह दुर्घटना सन् १९२२ की फरवरी की है। अहिंसा के द्वारा वेग से बढ़ते हुए आन्दोलन को यह बहुत बड़ा धक्का था। महात्माजी ने वर्किंग कमेटी में प्रस्ताव पास करके सत्याग्रह को स्थगित कर दिया। इसके कुछ ही दिनों बाद महात्माजी गिरफ्तार कर लिये गये। वह हम लोगों को रचनात्मक कार्यों को चलाते रहने का उपदेश दे रहे थे, पर उन कार्यों को तो मैदान के सिपाही कम पसंद करते हैं, क्योंकि ध्वंसात्मक प्रोग्राम तो उन्हें मसालेदार तरकारी-सा लगता है, जबकि रचनात्मक कार्य उबाली हुई भाजी। सत्याग्रह बन्द करने के कारण लोग गांधीजी पर खूब बिगड़े। काफी स्कूल-कालेज बन्द हो गये। अच्छे-से-अच्छे लड़के बाहर निकलकर हम लोगों के विद्यापीठ में चले आये। उन्होंने बस्ती में जाकर कांग्रेस का संदेश पहुंचाया। कचहरियों में कोई-कोई जाते थे। इन सबसे और मद्यपान की कमी की वजह से सरकार को कई करोड़ का घाटा हुआ। आज हम करीब-करीब जिन्हें नेता कह कर पुकारते है, वे सब उसी समय के वकील या विद्यार्थी इत्यादि हैं। एक ही दुर्घटना होने से सहसा हिंसा बढ़ने का भय हुआ और दमन के कारण दुतरफी हिंसा को बचाकर क्या गांधीजी ने अहिंसा के सिद्धान्त की कट्टरता नहीं दिखाई?

गांधीजी को आश्रम-जीवन में भी अपने सिद्धांतों का बड़ी कट्टरता के साथ पालन करते पायंगे। उनके आश्रम में रहनेवाला कोई भी आदमी उनके ११ नियमों का पालन करके ही वहां रह सकता था, यहां

तक कि कोई आदमी यदि इनमें से किसी नियम का कभी उल्लंघन करता तो गांधीजी स्वयं उपवास करते और सबके सामने बात प्रकट कर देते थे। गांधीजी के प्रिय भतीजे छगनलालजी गांधी थे, जो दक्षिण अफरीका से ही बहुत दिनों तक सेवा-कार्य करते रहे और जो आश्रम के अधिकारी तक बना दिये गए थे। एक बार हिसाब में उनके द्वारा कुछ गलती हो जाने के कारण अस्तेय के नियम का भंग समझा गया और उन्हें सदा के लिए निकाल दिया गया। इसी तरह एक बार कोई आदमी माता कस्तूरबा के सामने दो रुपये चढ़ाकर चला गया। बा उन्हें भूल गईं। दो-चार दिन बाद गांधीजी ने उन रुपयों को खोजा, तो वे वहीं पड़े मिले, जहां वे उन्हें भूल गई थीं। इसके कारण भी गांधीजी को उपवास करना पड़ा। अनजान में ही सही, किन्तु अपरिग्रह का नियम तो गांधीजी को इससे भी टूटता जान पड़ा। भला आप सोचें कि बेचारे छगनलालजी या माता कस्तूरबा ने जान-बूझकर कोई भूल थोड़े ही की थी। क्या बा ने दो रुपये चुरा लिये थे? किन्तु गांधीजी ने निःसंकोच इसके लिए भी प्रायश्चित किया।

३

रचनात्मक कार्यक्रम

गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन के समय विशेष करके चरखे पर जोर दिया। यों तो हमेशा वह इसके महत्व को समझाया करते हैं; किन्तु उनके रचनात्मक प्रोग्राम में सिर्फ चरखा ही नहीं है। और भी चीजें हैं। हम लोगों में से गांधीजी ने ही पहले-पहल इस बात को बड़े जोरों से दिखाया कि हिन्दुस्तान में अंग्रेजी हुकूमत हिन्दुस्तानियों ही के सहयोग पर टिकी है। यों तो इस बात को गांधीजी से तीस-चालीस साल पहले एक अंग्रेज प्रोफेसर सीली ने कबूल किया था कि हिन्दुस्तान जैसे बड़े मुल्क पर अंग्रेजों की हुकूमत वहां के लोगों की मदद से ही रह सकती है। जिस दिन हिन्दुस्तान के लोग हुकूमत से ऊब कर अपना सहयोग हटा लेंगे, उसी दिन अंग्रेजी हुकूमत का महल उसी तरह टूटकर चकनाचूर हो जायगा, जिस तरह कोई छत खंभों के टूट जाने पर गिरकर चकनाचूर हो जाती है। इसी असहयोग तत्व के आधार पर सन् १९२१ में गांधीजी और देश के सभी कार्यकर्त्ताओं ने घूम-घूमकर असहयोग का खूब प्रचार किया। किन्तु सभी क्रांतियों के समान इसके भी दो पहलू थे—ध्वंसात्मक और रचनात्मक।

महात्माजी ने चरखे को रचनात्मक कार्यक्रम कहा है; किन्तु इसका दूसरा पहलू भी है। महात्माजी को चरखे के रूप में जो बड़ा आविष्कार हासिल हुआ है, उसे समझना बहुत मुश्किल है। उन्होंने एक तरह से चरखे को ढूंढ़कर निकाला है। जब महात्माजी दक्षिण अफरीका में थे, तभी से उन्हें

बहुत दुःख था कि अंग्रेजों ने बड़ा अन्याय किया, जो हिन्दुस्तान के कपड़े के धन्धे को नष्ट कर दिया। यह तो एक ऐतिहासिक सत्य था। उन दिनों देश में देशी मिलें न थीं। इसलिए करीब-करीब एक सौ या नव्वै करोड़ का कपड़ा विलायत से आता था। महात्माजी हिन्दुस्तान के कपड़े के धन्धे को जीवित कर इतने रुपये देश से बाहर जाने से बचा लेना चाहते थे। उन्होंने चरखा कभी नहीं देखा था। उन दिनों गुजरात में चरखे का प्रचार बिल्कुल नहीं था। यदि महात्माजी बिहार या अन्य किसी प्रांत में खोजते तो उन्हें कितने ही चरखे मिल सकते थे, क्योंकि अनेकों प्रांतों में कुछ-न-कुछ चरखा चलाया ही जाता रहा है, बिल्कुल बन्द तो कभी हुआ नहीं। दक्षिण भारत और पंजाब में भी चरखे का चलन था।

एक दिन जब किसी गुजराती बहन ने गांधीजी को एक टूटा-फूटा-सा पुराना चरखा दिखाया तो गांधीजी उसे पाकर बड़े खुश हुए। गांधीजी इसी को खोज रहे थे। चरखे का सुधार और प्रचार उन्होंने शुरू किया। खोजने पर उन्हें देश के अनेक भागों में भी चरखा मिला। महात्माजी ने चरखे चलाने और खादी पहनने पर बहुत जोर दिया। देश से स्वराज्य के लिए जो एक करोड़ का दान लिया गया था, उसमें से अच्छी रकम इसके विचार के लिए भी दी गई। खद्दर ने पोशाक की एकता से बड़े-छोटे का भेदभाव बहुत-कुछ दूर कर दिया। समाज में धन के विषम बंटवारे के कारण कोई आदमी बहुत ज्यादा कमाता है और कोई बहुत कम। ज्यादा कमानेवाला बढ़िया और कीमती कपड़े पहनेगा तो छोटे भी वे ही कपड़े खरीदना चाहेंगे, जो वे पैसे की कमी से नहीं खरीद सकते। इससे समाज में ईर्ष्या, असंतोष और बड़े-छोटे का भाव बढ़ता है। मैं भी जब वकील था तो खास तरह की पोशाक सिलवानी पड़ती थी। लोग तो बहुत दिनों से कपड़े शौकीनी के लिए पहनते आये हैं। इसमें अपना ऐश्वर्य दिखलाने की भी इच्छा रहती है। पंडित मोतीलाल नेहरू के साथ एक बार जब मैं मुकदमे में काम कर रहा था, तो उन्होंने मुझसे कहा था, "क्योंजी, मालूम पड़ता है कि तुम सिर्फ जाड़ा काटने के लिए कपड़े पहनते हो?" मैंने कहा, "पंडितजी

और किस काम के लिए कपड़ा पहना जाता है ?" उन्होंने कहा, "कपड़ा पहनने का मतलब है कि लोग देखकर कहें कि ये भी कोई कपड़ा पहननेवाले हैं।" खद्दर ने इस भेद को दूर कर दिया। मेरा एक प्रिय नौकर है, जो बचपन से ही काम करता आया है। वह भी खद्दर पहनता है और मुझसे अच्छा ही है। वह तो फिर भी ढंग से कपड़े रखता है, किन्तु मैं यों ही पहन लेता हूँ। देश-सेवा का काम करनेवालों की यह एक वर्दी हो गई है। एक तरह की पोशाक में हम सभी एकता के धागे में बँधे मालूम होते हैं। खद्दर के साथ राष्ट्र-भक्ति की एक ऐसी भावना बँध गई है कि यह उसका एक प्रतीक हो गया है। एक तरफ तो खादी हम लोगों को सुसंगठित, और मजबूत करती है, दूसरी ओर यह प्रतिपक्षी को कमजोर बनाती है। देश के रुपये विदेश जाने से बचा लेना तो इसका मामूली-सा काम है और वह देशी मिलों के जरिये भी कुछ हद तक हो सकता था।

एक बार एक मिल-मालिक ने मुझसे कहा कि आप लोग खद्दर के बारे में व्यर्थ ही इतना प्रचार करते हैं। आप सभी जिस काम को मिलकर प्रचार करके भी नहीं कर पाते, उसको तो मैं बैठा-बैठा ही एक करोड़ के कपड़े मिल से तैयार करके कर लेता हूँ। दो-दो हजार मजदूरों को काम देकर उनमें से हरएक को आप लोगों से बहुत ज्यादा मजदूरी भी देता हूँ। रुपये-आठ आने की मजदूरी तो हम लोग साधारणतः देते ही हैं। आप चरखा चलानेवाले को आना डेढ़ आना मजदूरी देते होंगे। मैंने हिसाब जोड़कर उन्हें दिखाया कि यह सब तो सही है; किन्तु मिल में एक आदमी २०० तकुए चलाता है, जिसको २०० आदमी हाथ के चरखे पर चलाते। १९९ बेकार हुए, उन्हें आप कौन-सी मजदूरी देते हैं ? इसी तरह धुनने इत्यादि में भी आप बेकारी बढ़ाते हैं। बुनकरों की बात लें तो मशीन पर बुननेवाला एक आदमी पन्द्रह या बीस करघे खुद चलाता है, जिन्हें १५ या २० आदमी चलाते। इस तरह मैंने उन्हें दिखाया कि आपकी मिल लाखों मजदूरों को बेकार करती है। हालांकि मिलों में काम करके कुछ लोग ज्यादा मजदूरी जरूर पाते हैं, फिर भी देश के ज्यादा लोग निठल्ले रहते हैं। हिन्दुस्तान जैसे

देश में मिलों के कारण बेकारी की समस्या और भी बढ़ गई है तथा बढ़ती जायगी। खादी उन सभी बेकारों को चन्द आने घर बैठे देनेवाला रोजगार है। यह उनके व्यर्थ बीतते हुए समय की कीमत है। सिर्फ चरखे के अपनाने से ही हरएक व्यक्ति की औसत आमदनी सवाई बढ़ जाती है और वस्त्र के लिए तो कहीं भटकना ही नहीं पड़ता। दूसरी बात, मिल के कपड़ों की आमदनी एक आदमी या चन्द आदमियों के हाथ में जमा होती है और थोड़ा हिस्सा हर साल मिल के टूटने-फूटनेवाले औजारों को विदेशों से नया खरीदकर मंगाने या बदलने में देश के बाहर जाता है। बीस बरसों में मिलें पुरानी और बेकार हो जाती हैं। फिर नई खरीदने के लिए बहुत रुपये विदेश जाते हैं। यदि देश में ये मशीनें बनतीं भी तो भी थोड़े आदमियों के हाथों में ही रुपये जमा होते। इसकी जगह चरखे के प्रचार से आमदनी मजदूरों के हाथ में जाती है, कपड़ा बेचनेवालों के हाथ में बिल्कुल कम। चरखे के लिए बढ़ई और लोहार, रुई के लिए किसान और धुनिया, सूत बुनने के लिए बुनकर, जुलाहे इत्यादि, और सूत के लिए सभी बैठे लोग तथा असहाय विधवायें और अनाथ हैं। इसलिए खादी की आमदनी से इतने लोगों की परवरिश होती है। खद्दर में कपड़े का मूल्य बढ़ाकर आमदनी करने की तो बिल्कुल बात है ही नहीं, और मजदूरों की मजदूरी काटकर कपड़े को सस्ता बनाने की चाल भी नहीं है। हां, मजदूरों को खाने-पीने-भर काफी मजदूरी दे सकने की बात तो अवश्य है। इसके साथ-ही-साथ कपड़े को सस्ता बना सकने की भी बात है।

चरखे का आर्थिक पहलू मैंने बताया। कुछ और पहलू भी देखिये। हमारे देश में सौ आदमियों में से अस्सी किसान हैं। देश का बहुत-सा रोजगार मिट जाने के कारण—जैसेकि जुलाहे का रोजगार कपड़ा बुनना मिल के कारण बन्द हो जाने व ऐसे ही अन्य रोजगारों के खत्म होने से—सबका ध्यान खेती की ओर झुका है। एक तो लोग यों ही गरीब हैं और थोड़े ही खेतों पर जिन्दगी बसर कर रहे हैं। ज्यादा लोगों के आने से खेती और भी मुश्किल होती जा रही है। गरीबी बढ़ती जा रही है। इसलिए

चरखे और खद्दर का प्रचार जरूरी है । दूसरी बात यह है कि औसतन सभी जगह के किसान साल के सभी दिन और प्रत्येक दिन का सभी समय काम में नहीं लगा सकते । कुछ दिन जोतने में लगाये तो कुछ दिन बेकारी, कुछ दिन काटने में लगाये तो फिर कुछ दिन के लिए बेकार । बेकारी के जो दिन व्यर्थ बीत जाते हैं, उनमें यदि चरखे चलाये जायं, तो किसान को कम-से-कम अपने और अपने परिवार के लिए तो कपड़ा खरीदना नहीं पड़ेगा । कभी-कभी आधा ही दिन या चौथाई ही दिन काम करते हैं और बाकी समय बरबाद जाता है । यह समय अगर चरखे के काम में आ जाय तो कपड़े का बड़ा अभाव दूर हो सकता है । दो घंटे रोज चरखा चलाने-वाला कपड़े के लिए कभी मुहताज नहीं होगा । जो दिन भर चलायें, उनकी तो बात ही क्या है ।

इसके अलावा खद्दर के नैतिक और सांस्कृतिक पहलू भी हैं । खद्दर की पवित्रता और देशभक्ति की भावना तो लोग महसूस करते हैं । इसके द्वारा धन का जो समान वितरण होता है उसमें हमें एक तरह की भारतीय संस्कृति की झलक मिलती है । खादी विषमता के प्रति विद्रोह का भाव उत्पन्न करती है । होड़ को कम करती है । श्रम, आमदनी और उपज का अधिक समान वितरण करती है ।

बेकार समय के सदुपयोग से जहां लोगों की कुछ आमदनी भी बढ़ती है, वहां नैतिक उत्थान भी होता है, क्योंकि बेकार समय लोगों को नीचे गिराता है । गांधीवाद का यह चेतन संकेत है । अपने पक्ष में इसे विधायक रूप और विपक्ष के लिए इसे ध्वंसात्मक रूप दे सकते हैं । शिक्षा पर विचार करते समय आप इसकी और भी बातें देखेंगे ।

महात्माजी ने कचहरियों का बहिष्कार किया था । ये कचहरियां अंग्रेजी सल्तनत को कायम रखने के लिए स्तंभ का काम देती हैं । कहने के लिए तो ये न्याय के लिए हैं; किन्तु यहां न्याय ऐसे ही मामलों में किया जाता है, जहां हम आपस में लड़ते हैं । हमारे आपस में लड़ने से तो उनकी भलाई ही है । हमारे आपस के झगड़ों में उनका न्याय करना स्वाभाविक ही

है। वे हम लोगों के बीच में क्यों न न्याय करें ? किन्तु जहां उनके-हमारे बीच लड़ाई होती है, जो स्वराज्य की लड़ाई के सिवा और भी कई रूप धारण कर सकती है, वहां कोई सुननेवाला नहीं। इनके द्वारा स्टाम्प के रूप में बहुत-से रुपए ऐंठे जाते हैं। इसलिए गांधीजी ने इससे भी असहयोग करने को कहा। कचहरियों के जरिये भी सरकार हम लोगों पर धाक जमाती है। इनके बहिष्कार से वह धाक खतम होती है, किन्तु गांधीजी जिसका ध्वंस करते हैं, उसके बदले कुछ देते भी हैं। कचहरियों को छोड़ो; लेकिन उनकी जगह अपनी पंचायतें कायम करो। १९२१ में और बाद में भी देश भर के बहुत-से गांवों और शहरों में पंचायतें कायम हुईं। गांव के मुकदमे उन्हीं में फैसले होने लगे। यह कितनी बड़ी बात हुई थी! सरकार को स्टाम्प की आमदनी में बहुत घाटा हुआ; लेकिन आन्दोलन ढीला पड़ जाने और अन्य कई कारणों से बहुतेरी पंचायतें टूट गईं। अब लोगों की आंखें फिर खुलेंगी तो वे उन्हें फिर कायम करके पुनर्जीवित करेंगे।

इसके अलावा गांधीजी ने अंग्रेजी भाषा का बड़े जोर से विरोध किया था। कुछ लोग तो इससे बड़े सकपकाये कि लड़कों को मूर्ख रखकर गांधीजी क्या करेंगे ! किन्तु गांधीजी ने इस शिक्षा को अंग्रेजी सल्तनत का सबसे मजबूत पाया कहा है। इसके विश्लेषण के लिए बहुत समय चाहिए। उस समय सरकारी और संबद्ध शिक्षालयों के बहिष्कार के कारण इस बात पर जोर दिया गया कि राष्ट्रीय शिक्षा के लिए विद्यालय खोले जायं और बहुतेरे खोले भी गये। इन विद्यालयों के सामने यह प्रश्न हुआ कि जबतक राष्ट्रीय विद्यालयों के लिए कोई नई पद्धति अथवा पाठ्यक्रम तैयार न कर दिया जाय, तबतक वे क्या करें ? थोड़ा-बहुत हेर-फेर करके प्राय: उन्हीं विषयों को उसी तरीके से पढ़ाने की पद्धति जारी रखी गई। केवल दो विशेष परिवर्तन किये गए। एक तो यह कि मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बना दिया गया, और दूसरा यह कि विद्यालयों में चरखा चलाना एक प्रकार से अनिवार्य कर दिया गया।

यूनिवर्सिटियों और कालेजों में पढ़ने वाले भारतीय छात्र अंग्रेजी भाषा

सीखने में ही बहुत-सा समय लगा देते हैं और उनके दिमाग पर बहुत जोर पड़ता है। अंग्रेजी भाषा तो वे सीख जाते हैं; किन्तु उसके पीछे छिपे तत्त्व को वे बिल्कुल नहीं समझ पाते। अधिकांश या तो नौकरी करने लगते ह या बैठकर पढ़ी-लिखी चीज भूलने लगते हैं। मुझे याद है कि १९२१ के साल के असहयोग-आंदोलन के सम्बन्ध में गांधीजी जब उड़ीसा का भ्रमण कर रहे थे, तो किसी ने प्रश्न पूछा था कि आप तो अंग्रेजी शिक्षा का विरोध करते हैं; किन्तु आप भी अंग्रेजी पढ़कर इतने बड़े हुए हैं। महात्माजी ने उत्तर दिया, "महाराज, मैं कोई विशेष पढ़ा हुआ या बड़ा आदमी नहीं हूं। अत: अपने बारे में तो कुछ कह नहीं सकता; किन्तु हां, इसमें कोई शक नहीं कि तिलक भगवान यदि अंग्रेजी के माध्यम द्वारा शिक्षा न पाकर मातृभाषा द्वारा शिक्षा पाये होते, तो कौन कह सकता है कि वह जितने बड़े हुए उससे भी बढ़कर नहीं होते ? यदि वह गीता के इतने बड़े भाष्यकार यों ही हुए तो मातृभाषा द्वारा शिक्षा पाने पर न जाने और कितने बड़े विद्वान होते ?" उन्होंने कहा, "स्वामी शंकराचार्य या तुलसीदासजी कौन अंग्रेजी पढ़े हुए थे ? कौन नहीं जानता कि ये महापुरुष संसार में बेजोड़ हुए हैं ? इसमें कोई शक नहीं कि अंग्रेजी पढ़े-लिखे कुछ लोग भी हिन्दुस्तान में बड़े हुए हैं; किन्तु ऐसे लोग अंग्रेजी के ही कारण बड़े नहीं हुए। दूसरी बात यह कि हुए भी तो इतने कम कि उनकी गिनती इतने बड़े देश में अंगुलियों पर गिनने योग्य है। हमारे देश के इतने ऋषि-महर्षि तो हमारी ही शिक्षा की उपज थे। क्या जिन लोगों को आप अंग्रेजी पढ़ने के कारण बड़ा कहते हैं वे उनसे बढ़कर महान् और अधिक संख्या में हुए ? सन १८३३ ई० से ही अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार इस देश में है, किन्तु इन सौ वर्षों से भी अधिक समय में कितनी शिक्षा फैल सकी है ?"

गांधीजी ने सूत्ररूप में चरखा को शिक्षा का माध्यम बनाने को कहा। हम लोगों ने उनकी यह बात नहीं समझी। धूमधाम से सारे देश में प्राथमिक शिक्षा केन्द्र से लेकर विद्यापीठ तक खोले गये। हमारे प्रांत में भी अनेकों माध्यमिक शिक्षा-प्रवेशिका और उच्च शिक्षा के केन्द्र खुले।

हमारे विद्यापीठों से संबद्ध स्कूलों में ही विद्यार्थियों की संख्या २५ हजार के करीब थी। चरखे भी चलने लगे। यों तो सभी स्कूलों में चरखे चलाये जाते थे, फिर भी लोगों ने गांधीजी के अर्थ में चरखे को नहीं अपनाया। उन्होंने रस्म को ही निभाया। कुछ स्कूलों में तो चरखे पर ध्यान नहीं दिया गया। शिक्षा-पद्धति भी सर्वथा नवीन न हो सकी। नतीजा यह हुआ कि विद्यालय बहुत दिनों तक जीवित नहीं रह सके। विदेशी पद्धति के कारण हम लोग न उतना खच जुटा सकते थे और उसके कारण विद्यार्थियों को न तो योग्य शिक्षक मिलते थे और न दूसरे साधन ही, जो सरकारी विद्यालयों में सुलभ थे। सच पूछिये तो बहुतेरे राष्ट्रीय विद्यालय अंग्रेजी की नकल भर थे और वह भी बुरी नकल। फिर भी कुछ लोगों ने बहुत-से विद्यालयों को आजतक जीवित रखा; किन्तु अधिकांश जीवित ही मर रहे हैं। कुछ की दशा अच्छी भी है।

महात्माजी ने उस समय शिक्षा के संबंध में चरखे को माध्यम बनाने का विकसित रूप नहीं दिया; किन्तु कांग्रेस-मंत्रिमंडल के समय सन् १९३७ ई० में सोचकर एक शिक्षा-पद्धति बनाई, जिसको 'वर्धा-शिक्षा पद्धति' के नाम से सुनते हैं। महात्माजी बहुत पढ़ते नहीं हैं। वह स्वयं भी अपने को कोई विद्वान अर्थात् बहुत पढ़ा-लिखा नहीं कहते हैं; किन्तु वह कभी-कभी ऐसी बातें सोचकर कह देते हैं, जिन्हें सुनकर दुनिया के बड़े-बड़े शिक्षा-शास्त्री भी चकित रह जाते हैं। भारत में बहुत बड़े परिमाण में अशिक्षा है, यह बात छिपी हुई नहीं है। ब्रिटिश सरकार सदा से कहती आई है कि प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य करने में बहुत ज्यादा खर्च पड़ेगा, जो भारतवर्ष बरदाश्त नहीं कर सकता। श्री गोखले ने भी जब व्यवस्थापिका सभा के सामने अनिवार्य शिक्षा के लिए प्रस्ताव रखा था, तो सरकार की ओर से हिसाब करके इतना बड़ा खर्चा बतला दिया गया था कि उनका उत्साह ही ठंडा पड़ गया। तब से अबतक सरकार इस प्रश्न के उठाने पर यही उत्तर दे दिया करती थी। गांधीजी ने सरकार की शिकायत की जड़ ही काट दी। उन्होंने कहा कि लड़के किसी हुनर के द्वारा शिक्षा प्राप्त कर लेने में

शिक्षा-व्यय को आसानी से निकाल लेंगे और भविष्य की जीविका के लिए एक हुनर भी सीख लेंगे। चरखे को तो उन्होंने इसीलिए माध्यम बनाने को कहा कि इस हुनर का प्रयोग हो चुका है और कामयाबी भी हासिल हुई है।

चरखा अथवा दूसरे उद्योगों द्वारा जो आमदनी होगी, वह इतनी होगी कि अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा बिना सरकारी खर्च के दी जा सकेगी। उदाहरणार्थ, चरखे को माध्यम बनाने में सरल अंकगणित तो बच्चों को बताया ही जा सकता है, जैसे सूत को नापना, जोड़-घटाव, गुणा-भाग या त्रैराशिक। प्राइमरी स्कूलों के लड़के सीखते ही और क्या हैं? भूगोल में रुई, लकड़ी, लोहा और उद्योग कहां-कहां होते हैं, यह बताया जा सकता है। इतिहास में तो सारे देश का इतिहास मजे में बताया जा सकता है। हां, गणित के ऊँचे-ऊँचे सिद्धांत उससे न बताये जा सकते हों, किन्तु उनके लिए अलग जगह है। जो उसे पढ़ना चाहें वे ऊंची शिक्षा में पढ़ सकते हैं। लोगों ने इस पद्धति का बड़ा विरोध किया। गांधीजी ने छोटे छात्रों द्वारा जो आमदनी करने की बात कही, इसे विद्वानों ने नहीं माना, और कुछ ने तो यहांतक कह डाला कि इससे भारत के बच्चों का शोषण होगा। जब लड़कों की ही कमाई से शिक्षकों को वेतन मिला करेगा तो वे ज्यादा-से-ज्यादा पाने के लिए लड़कों को खूब खटाते रहेंगे; किन्तु यह सब भय का झूठा भूत था। गांधीजी ने इस शिक्षा-पद्धति की जांच के लिए, जिसमें पुस्तकों द्वारा नहीं, बल्कि किसी दस्तकारी या धंधे के द्वारा शिक्षा दी जाती है, देश भर के शिक्षा-शास्त्रियों की सभा बुलाई। वे लोग इसे देखकर अवाक् रह गये। उन्होंने कहा कि अमरीका आदि में ठीक इसी चीज की खोज हो रही है और इसी तरह की पद्धति वे अपना रहे हैं। फल यह हुआ कि सरकार ने भी इस शिक्षा-पद्धति का प्रयोग करना शुरू कर दिया है। कई प्रांतों में शिक्षा के कुछ केन्द्र खोले गये; किन्तु कई प्रांतों में अधिक विस्तृत पैमाने पर शुरू ही में आरम्भ करने से गड़बड़ी हो गई। हमारे प्रांत (बिहार) में आज भी यह ठिकाने से चालू है। शुरू में मैंने छोटे रूप में, प्रारम्भ करने के

लिए लोगों को सम्मति दी थी । पटना में काम करनेवाले उपाध्यायजी के समान एक योग्य आदमी मिल गये। चम्पारन में करीब १५ या २० पाठशालाएं एक इलाके में खोली गईं । कांग्रेस सरकार जबतक रही, उन्हें चलाती रही । जब गवर्नर ने अपने हाथों में वहां का शासन ले लिया, तब बिहार-सरकार के सलाहकार कजनसाहब ने डेढ़-दो-वर्ष तक काम होने पर जब उन विद्यालयों के लड़कों को देखा तो वह चकित रह गये । उन्होंने देखा कि उस शिक्षा-पद्धति से सीखनेवाले लड़कों का मन भी खूब लगता है और उनकी बुद्धि भी बहुत तेज होती जा रही है। मैंने भी गिरफ्तार होने के एक महीने पहले उन केन्द्रों में से कुछ को देखा । गांधीजी ने खर्चा निकालने की बात कही थी। वह तो इतनी सच मालूम हुई कि मैं दंग रह गया । यद्यपि लड़के एक या डेढ़ घंटे ही चरखा चलाते हैं, हालांकि गांधीजी ने तो अधिक समय तक चरखा चलाने की बात कही थी; परन्तु थोड़े समय चरखा चलाकर भी मालूम होता है कि सरकार को बहुत घाटा नहीं रहेगा । अभी सात वर्षों के पाठ्यक्रम में कुछ ही वर्षों का पाठ्यक्रम काम में आया है । ज्यों-ज्यों नये वर्ष के साथ नये वर्ग खुलते जायंगे, आमदनी बढ़ती जायगी, क्योंकि नये सीखनेवाले लड़के शुरू में सामान कुछ ज्यादा बर्बाद करते हैं, जिसका घाटा ऊपरी कक्षा के लड़के, जो बहुत अनुभव प्राप्त कर चुके होंगे, पूरा कर लेंगे । इसलिए सभी वर्ग खुल जाने पर घाटा होने की संभावना नहीं है । इन्हीं कारणों से वर्त्तमान आन्दोलन में भी बिहार सरकार ने यद्यपि ग्रामोद्योग-विकास तोड़ दिया, किन्तु कांग्रेस-शासन-काल की शुरू की हुई 'वर्धा-शिक्षा-योजना' को अबतक कायम रखा है । इसका एक-मात्र कारण इस शिक्षा-प्रणाली का ठोस होना है । लेकिन इस योजना का यह अर्थ नहीं कि लोग ऊँची शिक्षा पायंगे ही नहीं। जो ऊंची शिक्षा पाने के इच्छुक और योग्य होंगे, वे उसे भी पायंगे ।

मैंने अबतक जो कुछ कहा, उसमें रचनात्मक अथवा विधायक कार्यक्रमों की कुछ-कुछ रूप-रेखा आपने कुछ-न-कुछ जरूर देख ली होगी। इसका बहुत बड़ा महत्त्व है; लेकिन समझने की कोशिश किये बिना उसे कैसे समझा जा

सकता है ? जिन लोगों को यह भय था कि शिक्षक लड़कों को खूब खटायंगे, उनके सवाल का जवाब तो और भी सीधा है। एक तो गांधीजी के श्रद्धाप्रधान कार्यों में ऐसा होगा नहीं, दूसरे मान भी लिया जाय कि होगा, तो भी इस देश के सभी बच्चे इस अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के अनुसार ज्यादा-से-ज्यादा समय तक चरखे चलाने को अगर बाध्य किये जायं तो भी लाभ होगा। उन्हीं की मेहनत से हिन्दुस्तान भर के सभी लोगों के लिए इतने कपड़े तैयार हो जायंगे कि विदेश से या देशी मिलों से कपड़ा न खरीदना पड़े।

चरखे के संबंध में एक बात कहते हुए हम इस प्रसंग को समाप्त करते हैं। अच्छी तरह से सीखा हुआ आदमी एक चरखे से जितना सूत तैयार करता है, उससे अधिक सूत मिल का भी एक चरखा एक घंटे में तैयार नहीं कर सकता। साधारण गति से ४०० गज सूत एक घंटे में हम लोग तैयार करते हैं। कोई चतुर और तेज आदमी ७०० या ८०० गज सूत एक घंटे में तैयार कर लेता है, जबकि मिल का एक तकुआ भी एक घंटे में सात-आठ सौ गज ही तैयार कर पाता है। यही बात करघे के संबंध में है। एक तेज बुनकर करघे पर एक घंटे में करीब-करीब उतने ही गज कपड़े तैयार कर लेगा, जितने गज मशीन एक घंटे में प्रायः तैयार किया करती है। कोई-कोई बुनकर तो कुछ अधिक परिश्रम करके एक दिन में बीस-बाईस गज तक कपड़ा तैयार करते देखे गये हैं; किन्तु आदमी जानदार है और मशीन निर्जीव। इसलिए मशीन तो २४ घंटे भी चल सकती है, पर आदमी चंद घंटे ही काम कर सकता है और वह भी समान गति से नहीं, क्योंकि जैसे-जैसे काम के घंटे बढ़ते जाते हैं, थकावट के कारण गति कम होती जाती है। इसलिए यद्यपि गति दोनों की बराबर होती है, तथापि २४ घंटे में मिल का तकुआ चरखे के मुकाबले अधिक सूत पैदा करता है।

४

खादी का अर्थशास्त्र

यदि प्रतिदिन एक घंटा लोग चरखा चलायें तो अपने काम के कपड़े के लिए उन्हें कभी भटकना नहीं पड़ेगा। इसके अलावा यदि अपने बड़े हुए समय में एक-दो घंटे रोज हमारे प्रान्त के किसान चलाया करें, तो जमींदारों की मालगुजारी के संबंध में उनकी जो तकलीफें हैं, वे आसानी से मिट जायं। सुस्ती के समय सूत कातने की मजदूरी लेकर हम देखें तो इतने थोड़े समय तक ही रोज चलाकर बिहार के साढ़े तीन करोड़ लोग १४ करोड़ की खादी तैयार कर सकते हैं, जबकि सभी जमींदारों की आमदनी ११ करोड़ ही है। इस तरह वे अपनी जमीन आसानी से मुक्त कर सकते हैं। खादी खासकर गरीबों का सहारा है। मैंने देखा है कि कत्तिन पांच-पांच, दस-दस मील से चलकर सूत बेचने के लिए आती थीं और कितनी ही का एकमात्र सहारा सूत कातना था और आज भी है। बहुतों को चरखा-संघवाले रुई तौल देते और कता हुआ सूत मजदूरी देकर ले लेते हैं। अगर कभी किसी कारण से सूत खराब होने से, या रुपये की कमी से, सूत नहीं खरीदा जाता है तो वे गरीब इस तरह धाड़ मारकर रोने लगती हैं, मानों उनका लड़का अभी-अभी मर गया हो। यह तो उस समय की बात है जब हम लोग आना-डेढ़ आना ही मजदूरी दे पाते थे।

खद्दर का एक अलग अर्थशास्त्र है। इस अर्थशास्त्र का आधार पश्चिम के अर्थशास्त्र के सिद्धांत नहीं हो सकते, क्योंकि उनके द्वारा तो अधिकाधिक धन इकटठा करने के लिए ज्यादा-से-ज्यादा चीजें तैयार की

जाती है। उस अर्थशास्त्र के विद्वान भारतीय प्रोफेसर खादी के अर्थशास्त्र की बातें शीघ्र नहीं समझते, क्योंकि उनका ज्ञान पुस्तकों के सिद्धांतों पर निर्भर करता है। व्यावहारिक ज्ञान उन्हें है नहीं। अर्थशास्त्र की वे पुस्तकें पाश्चात्य देशों के अनुभवों पर हैं। यहां के अनुभवों को वे कैसे प्राप्त करें? मुझसे कुछ लोगों ने कहा था कि मिलों के कारण ही इंग्लैण्ड इतना खुशहाल है, फिर उन्हें अपनाकर भारत क्यों नहीं ऐसा हो सकता? लेकिन अगर सोचें तो इंग्लैण्ड के लोगों के खुशहाल होने का कारण कुछ और है। एक तो वह चार करोड़ लोगों का देश है। हमारे प्रांत की ही आबादी साढ़े तीन करोड़ है। बंगाल की आबादी है छः करोड़। हमारे एक प्रांत के समान वह देश है; किन्तु उसने दुनिया के एक-तिहाई हिस्से पर अपना कब्जा जमा रखा है, जिन सबका बाजार उसने अपने मिलों के सारे माल की बिक्री के लिए सुरक्षित रखा है। इसी कारण मिलों के द्वारा सामान तैयार करनेवाले जर्मनी और जापान-जैसे देश, बाजार के लिए ही इतनी भयानक लड़ाई लड़ रहे हैं। यदि ४० करोड़ की आबादीवाला यह देश भी इंग्लैण्ड के समान मिलों के द्वारा उपज करने लगे, तो उसकी खपत के लिए आप सूर्य-लोक या चन्द्रलोक, किसका बाजार खोजेंगे?

भगवान ने हमें दो हाथ अपनी जरूरत और दूसरों की सेवा करने के लिए दिये हैं। लेने ही के लिए नहीं, देने के लिए भी मिले हैं। इसलिए उन हाथों को बेकार करनेवाली मिल की यह प्रथा घनघोर हिंसा से लिपटी हुई है। जबतक हिन्दुस्तान में मिलें नहीं बनी थीं, विदेशी कपड़ा यहां आता था; किन्तु अब उनकी जगह भारतीय मिलों में बहुत कपड़ा बनने लग गया है तो भी उन लोगों की रोजी वापस नहीं लौटी, जो पहले चरखे-करघे से अपनी रोजी कमाते थे। मशीनों से हिन्दुस्तान के उन लोगों को कोई विशेष लाभ नहीं पहुंचा। इसी तरह भारत में पहले जो चीनी बनती थी, उसे गांव के लोग बना लिया करते थे। कुछ दिनों बाद जावा से मिलों में बनी चीनी आने लगी। उसे देखकर यहां भी चीनी की मिलें तैयार हुईं। अब चीनी इतनी तैयार की जाने लगी है कि यहां से बाहर जाती है।

इससे इस देश का तो फायदा हुआ; किन्तु जावा और भारत दोनों के उन गरीबों के दु:ख की, जो ये रोजगार करते थे, बढ़ती ही हुई। अत: वास्तव में कोई फायदा नहीं हुआ। एक जगह ऐश्वर्य तो दूसरी जगह गरीबी, यही मिल की कृपा है। मशीन के द्वारा ज्यादा-से-ज्यादा उपज करने का एकमात्र कारण ज्यादा-से-ज्यादा धन लूटकर इकट्ठा करना है। अमरीका इत्यादि में तो अन्न-वस्त्रादि को बहुत तैयार करने पर जब उनके लिए बाजार नहीं मिलता तो, वे फालतू माल जलाकर खाक कर देते हैं, और थोड़ा ही, किन्तु मंहगा बेचते हैं। माल को सस्ता बेचने पर उन्हें कोई फायदा नहीं होता। इसी कारण आज युद्ध के लिए खूंख्वार साधनों की तैयारी में करोड़ों रुपये रोज लगते देख रहे हैं। ये गोली-बारूद, गैस और हवाई जहाज इत्यादि सिर्फ नष्ट करने या नष्ट होने के लिए बनाये जा रहे हैं। खद्दर का अर्थ-शास्त्र अहिंसा का अर्थशास्त्र है। इसलिए मिल के साथ इसका कोई मुकाबला नहीं। मुकाबला तो समान चीजों में होता है। यह तो उससे अलग ही चीज है। महात्माजी ने जब देखा कि मिल के कपड़े के दो-तीन आने गज होने के कारण खादी को भी लोग सस्ती बनाना चाह रहे हैं और मजदूरों को कम मजदूरी मिल रही है, तो उन्होंने कहा कि अगर खद्दर को बचाना चाहते हो तो तुम्हें सूत कातनेवालों को आठ आने रोज देना होगा और दूसरे मजदूरों को भी इसी तरह। हम लोगों ने इस बात को अच्छी तरह नहीं समझा। ऐसा करने पर खादी बहुत ही महंगी हो जाती। इसीलिए मजदूरी सिर्फ अढ़ाई आने कर दी गई। नतीजा यह हुआ कि ज्यादा पैसा मिलने के कारण अब कितने ही मन लगाकर तथा अधिक परिमाण में कातने लगे। खादी की खूब तरक्की हुई, पर कीमत दुगुनी हो गई। हम लोगों की लड़ाई शुरू होने के पहले युद्ध के कारण यद्यपि मिलों के कपड़े की कीमत बहुत बढ़ गई, तथापि हमारे यहां खद्दर की कीमत बढ़ाने की कोई जरूरत नहीं थी। इसीलिए वही कीमत रही। नतीजा यह हुआ कि खद्दर की खपत और होने लगी।

इसी बीच एक सुधार और हुआ। जब मिल के कपड़े सस्ते थे, तो कत्तिनें

सूत की मजदूरी लेकर खुद मिल के कपड़े खरीदकर पहनती थीं, इसलिए गांधीजी के आदेशानुसार उनसे कहा गया कि जो कत्तिनें खुद खादी पहनेंगी, हम उन्हीं का सूत लेंगे। अब बहुतेरे कातनेवालों ने खुद पहनना शुरू कर दिया है। मजदूरी का छोटा-सा अंश काट लिया जाता है। जब एक साड़ी या कुरते की कीमत जमा हो जाती है तो वह कपड़ा उन्हें दे दिया जाता है। उन्हें एक पासबुक मिली हुई है, जिसपर उनका जमा रुपया लिखा रहता है। कोई कत्तिन अपने लिए अलग सूत कातकर रखती है और बुनवा लेती है। इस तरह खद्दर ने ज्यादातर गरीब किसानों और मजदूरों को कपड़ा ही नहीं, रोटी भी दी है। मैंने हिसाब करके देखा है कि खद्दर की कीमत में करीब एक-तिहाई हिस्सा किसान को, और इतना ही सूत कातनेवालों को और यही रकम बुनकरों को भी दी जाती है। कपड़े बेचनेवाले तो सैंकड़े दस या बारह पाते होंगे, किन्तु उनका भी तो संगठन करना ही पड़ता है।

खद्दर का यह अर्थशास्त्र अहिंसा का अर्थशास्त्र है। अहिंसा का हिंसा से मुकाबला नहीं हो सकता। पश्चिम-पूरब के देश सिर्फ विचित्र-विचित्र विध्वंसक वस्तुओं को ही नहीं बना रहे, बल्कि खास तरह की मनःस्थिति भी पैदा करते हैं। इंग्लैण्ड और यूरोप के देशों में घूमने जायं तो हरएक जगह युद्ध के स्मारक देखेंगे। यहां फलानी लड़ाई हुई थी, यह उसके विजेता हैं। इस तरह के स्मारकों को वहां लड़के बचपन से ही देखते हैं। उनके भी मन में उसी तरह के बहादुर बनने की इच्छा होती है। फल यह होता है कि वे लोग जान देकर भी जान लेना चाहते हैं; किन्तु हमारे देश की यह कभी प्रथा नहीं रही। अंग्रेजों ने भले ही प्लासी या बक्सर इत्यादि में युद्ध के स्मारक खड़े किये; किन्तु उसके पहले के मुसलमानों या हिन्दू जमाने के युद्ध-स्मारक हमारे देश में नहीं हैं। सच पूछिये तो यह हमारी संस्कृति ही नहीं। यों तो अंग्रेजों या अंग्रेजी शिक्षा से हमेशा ही हमारे बच्चों को यह झूठी सीख मिलती रही है कि अंग्रेज ही इस देश में शांति लाये हैं। पहले हमेशा हिन्दुस्तान के लोग आपस में लड़ते रहते थे, पूरी अराजकता थी। किंतु ये बातें बिल्कुल झूठी हैं। हम और आप यों तो

खेत की आड़ के लिए भी लड़ते रहते हैं; किंतु यह भी कोई लड़ाई है ?

यूरोप महादेश के छोटे-छोटे देश वास्तव में हमेशा लड़ते ही रहते हैं। इन्हीं पिछले १०० वर्षों से जितनी लड़ाइयां यूरोप में होती रही हैं, उतनी हिन्दुस्तान के इतिहास में कभी नहीं देखीं। सन् १८६० से लेकर आजकल लगातार एक के बाद एक लड़ाई होती रही है। जर्मनी के बिस्मार्क ने सन् १८७० में फ्रांस को बुरी तरह हराया। फ्रांस ने १९१८ में उसका बदला लिया; किन्तु १९४० में दूसरा ही रंग देखा। जर्मनी ने फ्रांस को रौंद डाला। अभी कौन जानता है कि क्या होगा ? किन्तु अगर इस लड़ाई के बाद भी लोग नहीं संभले और युद्ध खत्म होने पर इंग्लैण्ड, रूस, चीन और अमरीका इत्यादि में, जो इस समय साथी नजर आ रहे हैं, उद्देश्यों की एकता नहीं हुई, तो कुछ ही वर्ष बाद इससे भी भयंकर युद्ध होगा और लोगों को झख मारकर अहिंसा की शरण लेनी पड़ेगी। अगर उसके बाद भी लोगों ने अहिंसा को नहीं अपनाया तो लड़कर मिट जायंगे और सारी सभ्यता को खाक में मिला देंगे। सभ्यता आज भी मिट रही है। यूरोप के बड़े-बड़े प्रोफेसर दिन-रात इसी बात की चेष्टा में हैं कि वे कैसे नये-नये विध्वंसक अस्त्र ईजाद करें, जो मनुष्य का नाश तुरन्त कर दें। अब हमारे देश में अगर ऐसी तैयारी की जाय, तो की जा सकती है; किन्तु उसमें बहुत दिन लगेंगे और जिस दिन हम लोग आज की-सी तैयारी कर पायंगे, उस दिन तक दुनिया हिंसा में बहुत दूर तक आगे बढ़ चुकी होगी। इसलिए इस असभव कल्पना से और हर तरह से हमारा कर्तव्य है कि हम अहिंसा के इस नये अस्त्र को ही हाथ में रखें, जिसमें न तो कोई खर्च है और न कोई मुकाबला। प्रतिपक्षी के मुकाबले हम इस शस्त्र की लड़ाई में बहुत अधिक तैयार हैं और उसके पास इसकी कोई काट भी नहीं है।

हमारी संस्कृति के अनुकूल हमारे घर के काम की दूसरी चीजें ऐसी हैं, जो पाश्चात्य अर्थशास्त्र के प्रतिकूल ठहरती हैं। ग्रेग[१] महाशय भारतीय घरों की चक्की इत्यादि देखकर चकित रह गये थे;

१. **श्री रिचर्ड बी. ग्रेग, 'अहिंसा की शक्ति' आदि ग्रंथों के प्रणेता।**

किन्तु हमारे यहां हमेशा इस बात का ध्यान रखा गया है कि इतने मनुष्यों के जीवन-निर्वाह के लिए सभी व्यक्तियों को ईश्वर अथवा प्रकृति की ओर से मिली शक्तियों का उपयोग करना चाहिए। उन्हें शोषण पर जीने का कोई हक नहीं। गांधीजी मूल की बातों को पकड़ लेते हैं, इसलिए दुनिया आज नहीं तो कल, उनके आदेशों को अवश्य अपनायेगी।

मिल के द्वारा जो खाने-पीने की चीजें तैयार की जाती हैं, उनकी जीवन-दायिनी शक्ति खराब हो जाती है, कम हो जाती है या नष्ट हो जाती है। इसलिए उनके खाने से लोगों को कम फायदा होता है। महात्माजी ने मिल के तेल की जगह कोल्हू में कुछ ऐसा सुधार करवाया कि आज उसी की नकल पर सरकार ने भी कई जगह कोल्हू स्थापित किये हैं। कपड़े के बारे में तो आप काफी सुन चुके हैं। महंगा होने के कारण जिनको शिकायत है, उनको महात्माजी मुंहतोड़ उत्तर देते हैं कि यदि आपको खद्दर से प्रेम है तो यह आपके लिए कभी महंगा हो नहीं सकता। आप क्यों नहीं अपने हाथ से सूत तैयार कर लेते हैं ? अपने २४ घंटे के समय का एक-एक मिनट दूसरे काम में लगानेवाले कितने आदमी हैं, जिन्हें सूत कातने की फुर्सत नहीं ? यदि गांधीजी इत्यादि बड़े-बड़े नेताओं को भी अपने कपड़े के लायक सूत कातने का समय मजे से मिल जाता है, तो कोई कारण नहीं कि और लोगों को इसके लिए समय न मिले ! समय न मिलने का बहाना व्यर्थ है। एक घंटा रोज सूत कातने में चालीसों गज कपड़ा या इससे ड्योढ़ा भी साल भर में मजे से निकाला जा सकता है, जबकि हिन्दुस्तान के प्रत्येक व्यक्ति के लिए कपड़े की औसत जरूरत १६ गज है।

अस्वाद के नियमों के कारण गांधीजी पौष्टिक अच्छी चीजें खाने को तो मना नहीं करते; किन्तु स्वाद के लिए मसालेदार बनाकर खाने को जरूर निषिद्ध मानते हैं। आज आप बाजारों में मिलों के छँटे हुए साफ-साफ चावल पाते हैं, जिसका भात तो बिल्कुल चमाचम होता है; लेकिन मोटे छिलके के बाद चावल पर जो लाल-लाल हिस्सा होता है, वास्तव में वही खाने की चीज है। उसे हम लोग 'कण' या 'गुणा' कहते हैं। अंग्रेजी में

इसी को जीवन-शक्ति बढ़ानेवाला 'विटामिन' नामक पदार्थ कहते हैं।

मिल के छंटे चावल में वह बिल्कुल नहीं रह पाता। रहा भी तो मांड़ में चला गया। सिट्ठी खाने से क्या फायदा ? हम लोग उस छंटे कण को तो बैल को खिला देते हैं और स्वयं छंटे चावल की सिट्ठी खाते हैं। मिल के पिसे आटे में सार-तत्व बहुत जल जाता है। इसलिए गांधीजी ने चावल को शरीर की रक्षा और वृद्धि के लिए लाल हिस्से सहित और आटे को चोकर-सहित खाने की सम्मति दी है। कई आश्रमों में ऐसा करके हम लोगों ने देखा है कि कण और चोकर रहने देने से पौष्टिकता और वजन दोनों बढ़ जाते हैं और इससे पांचवें हिस्से की बचत हो जाती है। हिन्दुस्तान में कुल चावल की पैदावार जरूरत से दस प्रतिशत अर्थात दसवां हिस्सा कम होती है। महात्माजी के इस उपाय को अपना लेने से एक तो पौष्टिकता की वृद्धि हो जाती है, दूसरे चावल की कमी पूरी होकर कुछ बच रहता है। इसमें तो स्वास्थ्य के बड़े-बड़े विद्वान भी सहमत हैं। महंगी के कारण मद्रास सरकार ने अब गांधीजी के उपायों को अपनाते हुए यह घोषणा की है कि इस साल चावल न छांटा जाय।

इस तरह गांधीजी घरेलू उद्योगों पर जोर देते हैं। सूत कातना, खद्दर बुनना, तेल या चावल तैयार करना वगैरा उन्हीं घरेलू उद्योगों के उदाहरण हैं, जिनका प्रयोग भी बहुत-कुछ हो चुका है। इससे बेकारी बिल्कुल दूर होती है और धन का समवितरण होता है। घरेलू उद्योगों की अर्थ-व्यवस्था पूंजीवाद का जबर्दस्त विरोध करती है। दरिद्र-नारायण की सेवा और रक्षा तो घरेलू उद्योगों से हो सकती है। यह भारतीय संस्कृति की अपनी चीज है, जिसके रूप में गांधीजी विश्वशांति का सन्देश देते हैं।

५

गांधीवाद और समाजवाद

गांधीवाद और समाजवाद का उद्देश्य यद्यपि बहुत-कुछ एक-ही-सा मालूम होता है फिर भी उनकी पहुँच के मार्ग में काफी अन्तर है। समाजवाद व्यक्ति के सुधार को कोई पृथक् महत्त्व नहीं देता। वह समाज की सारी व्यवस्था करके उसे प्रत्येक के माथे मढ़ता है। यह सभी को मान्य है कि समष्टि व्यक्ति का ही समुदाय है, समाज व्यक्तियों से ही बनता है; किन्तु प्रश्न यह होता है कि समाज को उन्नत बनाने के लिए पहले व्यक्ति को उन्नत बनाना होगा या किसी सामाजिक व्यवस्था के द्वारा हम समाज को उन्नत बना सकते हैं, जिससे व्यक्ति की भी उन्नति हो पायगी ? गांधीवाद का कहना यह है कि व्यक्तियों के सुधार और उनकी उन्नत अवस्था के द्वारा ही समाज की उन्नत अवस्था स्थापित हो सकती है। समाजवाद को भी हिंसा अख्तियार करने का कोई आग्रह नहीं है। वे वर्ग-संघर्ष का अन्त कर समाज की शांति-व्यवस्था और अहिंसा की स्थापना करना चाहते हैं। इसके लिए शुरू में यदि हिंसा का सहारा लेना पड़े तो वे इसमें कोई आपत्ति नहीं मानते। किन्तु व्यावहारिक रूप में यही दिखाई देता है कि समाजवादी रूस भी उसी तरह हिंसा की तैयारी करके युद्ध में प्रवृत्त है जिस तरह दुनिया के दूसरे साम्राज्यवादी या फासिस्ट राष्ट्र। इसलिए ऐसी अहिंसा भी प्रतिहिंसा पैदा करेगी। गांधीवादी हिंसा का तुरन्त परित्याग कर अहिंसा की साधना करते-करते अहिंसा की स्थापना करना चाहता है। वह कोई सुधार या व्यवस्था मनुष्य पर ऊपर से नहीं लादना

चाहता, बल्कि उसके भीतर से लाना चाहता है। समाजवाद की व्यवस्था आजादी पाने पर शुरू हो सकती है; किन्तु गांधीवाद के सन्देश किसी भी हालत और किसी भी स्थिति में अपनाये जा सकते हैं।

गांधीवाद और समाजवाद का अन्तर समझने के लिए हम इनकी आवश्यकताओं के मूल से शुरू करें। दोनों ही समाज की विशेष तरह की व्यवस्था बतलाते हैं। समाज की अच्छी और शांतिपूर्ण व्यवस्था किस तरह हो? समाज की अच्छी व्यवस्था हम किसलिए चाहते हैं? सुख के लिए। किन्तु हमें सुख की परिभाषा जाननी होगी। गांधीवाद सुख-दुःख का लगाव अन्तःकरण से मानता है। सुख भीतर का आनन्द है। वह मन की एक विशेष स्थिति है; किन्तु समाजवाद बाहर की चीजों की प्राप्ति और उसके उपभोग में सुख मानता है। देखना यह है कि सुख वास्तव में कौन है? मान लीजिये, हमारे पास कोई चीज है जो हमें सुख देती है। उससे सुख पाने के कारण फिर हम वैसी दो चीजें चाहेंगे। इसी तरह ज्यादा-से-ज्यादा सुख पाने की हमारी तृष्णा बढ़ती जायगी। दूसरी ओर, बहुतों के पास वह सुख नहीं है; किन्तु वे जानते हैं कि उस चीज में सुख है। इसीलिए वे भी उस चीज को पाने के लिए कोशिश, छीना-झपटी करेंगे। अब सुख की एक चीज, जो मेरे पास है, कइयों को अपनी ओर खींचेगी, जिससे वे सभी मुझसे वह चीज छीनना चाहेंगे। समाजवाद कहेगा कि हम सभी के लिए वैसी एक-एक या बराबर चीज दे देंगे।

इस तरह समाजवाद का मानना है कि हमारी जरूरतें जितनी बढ़ेंगी, हम उनके लिए उतनी कोशिश करेंगे और हमारा उतना उत्थान होगा। चूंकि चीजों में सुख की स्थिति मानी जाती है, अतः हम ज्यादा-से-ज्यादा ऐसी और इससे भी अधिक सुखकर चीजें हासिल करने की इच्छा रखेंगे। तृष्णा बढ़ती जायगी। तृष्णा का कोई अन्त नहीं। मनुष्य बूढ़ा होता है; किन्तु तृष्णा तरुण होती जाती है। समाजवाद का यह मार्ग प्रवृत्ति-मार्ग है। इसमें सुख की तृष्णा का कोई अन्त नहीं। तृष्णा का अन्त निवृत्ति-मार्ग

में ही संभव है। निवृत्ति अर्थात् तृष्णा को रोककर उसका परित्याग करके हम उसपर विजय पा सकते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि हम सुखकर चीजों का सेवन ही न करें। करें, किन्तु शरीर-रक्षा के निमित्त, सुख उठाने के निमित्त नहीं, और वह भी निर्लिप्त होकर। संसार की सारी चीजें क्षणिक हैं। सुख का कोई भी सामान कुछ ही दिनों में नष्ट हो सकता है, किन्तु तृष्णा बनी रहेगी। इसलिए सुख यदि बाहर की वस्तु में रहता है तो झगड़े बढ़ते हैं। वास्तव में कोई व्यवस्था नहीं होती। इसलिए हिन्दू धर्म और दूसरे धर्मों का यह विचार कि सुख हृदय का भाव है, गांधीवाद भी स्वीकार करता है। आनन्द की जो बौछार भीतर से होती है, उसे छीनने के लिए कोई झगड़ा नहीं करेगा; क्योंकि वह तो एक भाव विशेष है। योगियों का आनन्द इसी तरह का आनन्द है। महर्षि रमण और गांधीजी इसी तरह के व्यक्ति थे। उनके पास भौतिक सुख के विशेष सामान नहीं थे। वे तो अकिंचन ही थे; किन्तु उन्हें जो आनन्द प्राप्त था वह संसार में बिरले ही पाते हैं। हम सोचकर देखें कि हमें हृदय की भावना को संतुष्ट करने में जो सुख मिलता है वह क्या जिह्वानन्द में मिल सकता है? हमारे यहां राजा जनक का उदाहरण दिया जाता है। उन्हें भोग की सारी वस्तुएं प्राप्त थीं और वे उनका उपभोग करके भी उनसे निर्लिप्त रहते थे। ठीक उसी तरह हम भौतिक पदार्थों की आवश्यकता समझकर काम में लाते हैं; किन्तु आजकल के भौतिकवाद के समान उसीमें सुखवाद न मान लें।

हममें शरीर ही सबकुछ नहीं, शरीर से भिन्न कोई वस्तु है। इसलिए शरीर की आवश्यकताओं से भिन्न दूसरी आवश्यकताएं भी हैं। इस शरीर का सर्वस्व आत्मा है। प्रश्न यह उठता है कि शरीर आत्मा के अधीन है या आत्मा शरीर के? भौतिकवाद तो हमें यही उत्तर देगा कि शरीर ही सबकुछ है, आत्मा उसी के अधीन है; किन्तु गांधीवाद हमें और हमारे शरीर को दो मानता है तथा देह को देही के अधीन मानता है। आत्मा के सुख के लिए बाहर की सुखकर वस्तुओं की आवश्यकता नहीं पड़ती। गांधीजी का मार्ग मध्य-मार्ग है। अतः उसमें बाहर की वस्तुओं के

प्रति उपेक्षा नहीं, किन्तु तृष्णा पर पूरा नियंत्रण है। यहां अन्तर का सुख ही सुख माना जाता है। सुख की यह परिभाषा मान लेने पर एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से और एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र से संघर्ष बढ़ता है। यह इसकी दार्शनिक व्याख्या हुई।

वर्ग-संघर्ष का अन्त दोनों चाहते हैं, किन्तु इसका अन्त कैसे हो? यह आप देखते हैं कि समाज में अर्थ के विषम बंटवारे के कारण यह संघर्ष दिनों-दिन उग्र होता जा रहा है। समाज में अधिकांश लोग अच्छी तरह निर्वाह करने लायक भी योग्यता नहीं रखते, और थोड़े लोग लखपति और करोड़पति हैं। दोनों को बराबर कैसे किया जाय? समाजवाद कहेगा कि हम अमीरों की सम्पत्ति छीनकर सबमें बराबर बांट देंगे। ऐसा करने पर एक अमीर तो मिट जाता है; किन्तु अधिक धन पाने का लालसा-रूपी अमीर तो हृदय में बैठा ही रह जाता है। गांधीवाद कहता है कि हमें उस अमीर की सम्पत्ति छीनने की जरूरत नहीं, क्योंकि इससे एक ओर प्रतिहिंसा उत्पन्न होगी, दूसरी ओर धन का सम्मान बढ़ेगा। अतः इसकी प्राप्ति के लिए संघर्ष बढ़ेगा। इसलिए गांधीवाद कहता है कि हम उस अमीर के हृदय को इस तरह बदल देंगे और उसके शोषण का मुंह इस तरह बन्द कर देंगे कि वह स्वयं अपनी खुशी से साधारण लोगों की श्रेणी में उतर आयगा। उसका यह परिवर्तन व्यक्ति के ऊपर लादा हुआ परिवर्त्तन नहीं होगा, बल्कि उसके भीतर से आया हुआ उसकी स्वेच्छा से उसके हृदय का परिवर्त्तन होगा। यह अन्तर वास्तव में हिंसा और अहिंसा का अन्तर है। हिंसा के द्वारा बलपूर्वक वर्ग-संघर्ष मिटाने पर संघर्ष वास्तव में मिटेगा नहीं, क्योंकि जो ऐसा करेगा वही एक वर्ग बन जायगा। इससे वर्ग के विरुद्ध प्रतिहिंसा की भावना बनी रहेगी। जबतक हिंसा उसे दबाकर रख सकेगी, दबी रहेगी; किन्तु उसके दुर्बल होते ही मौका पाकर वह फिर पनप उठेगी और वर्ग-संघर्ष नया रूप ले लेगा। इसलिए हिंसा के द्वारा वर्गहीन समाज की रचना एक खोखली बात है। हां, इसमें कोई शक नहीं कि दोनों ही अपने-अपने आदर्श की बात कहते हैं। आदर्श इसीलिए आदर्श है कि वह जीवन से हमेशा

ऊँचा रहे; किन्तु उसकी ओर चलने में जीवन को राह में जो मिलना हो सकता है वही काफी हो जाता है। गांधीवाद सेवा और त्याग को महत्व देता है। जिसका जितना बड़ा त्याग है, वह उतना सम्मान का पात्र है। अतः वह प्रवृत्ति के नहीं, निवृत्ति के मार्ग पर चलता है। इसी को यों भी कह सकते हैं कि यह व्यक्तिवाद को लेकर चलता है। व्यक्तियों के अधिकाधिक सुधार से यह समाज की उन्नत स्थिति की कल्पना करता है।

६

गांधीजी की जीवन-गंगा

इस समय तक भारतवर्ष की चारों दिशाओं में बुद्धदेव के या उनके धर्म के अनुयायी अशोक के चिह्न-स्तंभ या तो खड़े पाये जाते हैं, या जहां खड़े नहीं हैं वहां टूटे-फूटे टुकड़ों की शक्ल में मिलते हैं। जो कुछ उस समय के उनके नियम थे, वे सब इन स्तंभों पर लिखे मिलते हैं। उन दिनों में ये बातें कागज पर छपाकर आसानी से सारे देश में नहीं भेजी जा सकती थीं और न उनका प्रचार किया जा सकता था। इसलिए उस समय के अनुसार अशोक ने यही निश्चय किया कि स्थान-स्थान पर इस तरह के स्तंभ खड़े किए जायं और जहां-जहां मौका मिला, उन नियमों को पत्थर पर खुदवाकर उनका प्रचार किया गया। इस तरह इनका प्रचार उत्तर से लेकर दक्षिण तक के प्रदेशों में और पश्चिम से लेकर पूर्व तक के प्रदेशों में हुआ। आज भारत के प्रत्येक भाग में इस तरह के खुदे हुए लेख और स्तंभ मिलते हैं। यह बात उस समय के अनुरूप ही है।

बुद्धदेव के बाद पिछले पच्चीस-छब्बीस सौ वर्ष में भारतवर्ष में दूसरा ऐसा कोई व्यक्ति नहीं हुआ, जिसने लोगों के जीवन पर इतनी गहरी छाप डाली हो, जितनी गांधीजी ने डाली है। मेरा यह सौभाग्य रहा है कि ३०-३१ वर्ष तक गांधीजी के चरणों में रहकर मैं बहुत निकट से कुछ-न-कुछ करता रहा। मैंने एक जगह लिखा है कि गांधीजी बहुत बड़े महापुरुष थे और उनके नजदीक रहकर भी मैं उतना लाभ न उठा सका जितना उनके निकट रहने-वालों को उठाना चाहिए। यह बात सर्वथा ठीक है। मुझमें जितनी शक्ति थी उतना ही लाभ मैं उठा सका। मनुष्य में जितनी शक्ति और प्रतिभा होती

है उसके अनुसार ही वह काम करता है। किसी बीमार से डाक्टर लोग यह कहें कि फलां औषधि पौष्टिक है और अगर वे उसे उस औषधि को दें भी, पर बीमार में उसको पचाने की शक्ति न हो तो उसके लिए वह औषधि किस काम की ? वह उस बीमार को लाभ नहीं पहुंचा सकती। यही बात बड़े लोगों के समागम से होती है। जिस तरह गंगा नदी हिमालय से लेकर समुद्र तक १५००-१६०० मील बराबर बहती है, उसी तरह महात्मा गांधी अपनी ८० वर्ष की अवस्था तक लोगों को सिखाते गये और हमारे ऐहिक और पारलौकिक जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली बातें बताते गये। गंगा तो सब जगह होकर बहती है, मगर उससे किसी को ज्यादा लाभ मिलता है और किसी को कम। सबको बराबर लाभ नहीं मिल पाता। जिसमें जितनी शक्ति होती है वह उतना ही लाभ उससे उठाता है। कोई छोटे-से-छोटे लोटे में उसका जल निकालकर पी सकता है और किसीके लिए वह भी संभव नहीं होता। गांधीजी का जीवन ऐसा ही था। जिसकी जितनी शक्ति थी वह उतना लाभ गांधीजी की जीवन-गंगा से हासिल करता था। मैं उनके नजदीक रहकर उनकी जीवन-गंगा से एक लोटा भर ही अमृत ले सका।

गांधीजी का जीवन आदर्श जीवन था। वह अपने जीवन से लोगों को यह दिखा गये कि किस तरह मनुष्य को अपना जीवन बनाना चाहिए। हमें यह समझ लेना चाहिए कि उन्हीं के बताये हुए आदर्श पर चलकर हम अपना और देश का भला कर सकते हैं। हमें चाहिए कि हमेशा उनके आदर्श को सामने रखकर हम आगे बढ़ें। गांधीजी को यहां से गये अभी बहुत दिन नहीं हुए हैं। शायद हमने उनसे कुछ सीखा नहीं और ऐसा मालूम होता है कि बहुत-कुछ सुना नहीं, उनके साथ रहकर हम उनसे बहुत दूर बने रहे। हमने उनसे वही सीखा जो सीख सकते थे। एक कहावत है कि चिराग के नीचे अंधेरा। वही कहावत यहां भी लागू होती है। हम चिराग के नीचे रहते थे, फिर भी हमारा व्यक्तित्व उनके प्रकाश से ज्योतिर्मय न हुआ।

भारतवर्ष के सामने आज यही सबसे बड़ी समस्या है कि गांधीजी के

बताये हुए रास्ते पर कहां तक और कबतक चला जा सकता है और कहां तक उसके बदले में दूसरे रास्ते पर चलने में इसकी भलाई है ? मेरा अपना विश्वास यह है कि भारतवर्ष के लिए ही नहीं, सारे संसार के लिए गांधीजी के बताये रास्ते के सिवा कोई दूसरा रास्ता नहीं है । अगर हम शांति चाहते हैं, सुख चाहते हैं, सचमुच मनुष्य बनकर रहना चाहते हैं, तो हमें चाहिए कि हम गांधीजी के बताये हुए मार्ग पर चलकर अपनी और साथ-साथ सारे संसार की भलाई करें । आज दुनिया में नये-नये आविष्कार हो रहे हैं । वैज्ञानिक आविष्कारों के फल आज हमको मिल रहे हैं । उनको देखकर हम लुभा जाते हैं; पर इस लोभ को देखकर अक्सर मुझे डर लगता है कि कहीं हम गलत रास्ते पर न चले जायं । पहले भी ऐसा हुआ है । दूसरे देश के लोगों ने यहां की शिक्षा से फायदा उठाया और हम इस देश में रहते हुए भी उससे वंचित रहे । गांधीजी के जीवन से हमने लगभग कुछ नहीं सीखा । हो सकता है कि उन्होंने जो-कुछ बताया उसको हम भूल जायं और दूसरे देश के लोग, जिन्होंने उनकी शिक्षा को अपनाया हो, हमारे यहां आकर हमको उनकी शिक्षा का पाठ नये सिरे से पढ़ायें । भगवान् बुद्धदेव भारत में पैदा हुए । हमने उनसे जो-कुछ सीखा था, हम उसको भूल गये । देश के बाहर के लोगों ने उनके सिखाये हुए मार्ग पर चलकर बहुत-कुछ लाभ उठाया और वही लोग आज हमको उनका संदेश सुना रहे हैं । ८० वर्ष की अवस्था तक भगवान् बुद्ध इस देश में प्रचार करते रहे । गांधीजी भी ८० वर्ष तक प्रचार करते रहे । सारे देश में भ्रमण करके उन्होंने लोगों को शिक्षा दी । उनके जीवन में और जीवन के बाद भी, करोड़ों लोगों ने उनकी शिक्षा को ग्रहण किया था । मगर सारे देश में देखा जाय तो आज इने-गिने बुद्ध-मतवाले मिलते है, जबकि दूसरे देशों में आज भी करोड़ों की संख्या में युद्ध-मतवाले लोग मिलते हैं । हां, यह ठीक है कि उनका बहिष्कार नहीं किया गया । मेरा विचार है कि बुद्धदेव की शिक्षा हमारे देशवासियों ने बहुत हद तक अपने जीवन में अपनाली । मैं चाहता हूं कि इसी तरह हम गांधीजी के आदर्शों के

अनुकूल आचरण करें। जो-जो मुसीबतें हमारे सिर पर आयें, उनसे हम बचें। गांधीजी चाहते थे कि एक-दूसरे के साथ प्रेम का व्यवहार किया जाय। हम आपस में मिल-जुलकर रहें। सिर्फ अपने ही लोगों से नहीं, बल्कि मनुष्यमात्र से प्रेम का बर्ताव करें। इस शिक्षा को हमें ध्यान में रखकर अपने जीवन को उसी तरह बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। इससे सारे देश का उद्धार होगा।

महात्मा गांधी स्मृति मंदिर, बंबई का
उद्घाटन-भाषण।
६-४-५०

७

गांधीजी का मार्ग

जब पूज्य बापू पहले-पहल १९२२ में गिरफ्तार हुए थे, उसके बाद देश में एक ऐसा वायुमंडल बना, जिसमें कुछ लोग एक तरफ और कुछ दूसरी तरफ हो गये और जमनालालजी की प्रेरणा से यह निश्चय किया गया कि एक गांधी-सेवा-संघ स्थापित किया जाय, जिसमें महात्माजी के विचारों का लोग अध्ययन करें। इससे जो लोग उनको मानते हैं वे उन विचारों के अनुसार अपना जीवन बिता सकेंगे। इस तरह 'गांधी-सेवा-संघ' की स्थापना हुई, जो १९४० तक चलता रहा। अन्त में महात्माजी ने स्वयं सोचा कि सेवा-संघ के अलग रहने की जरूरत नहीं है और उन्होंने उसे बन्द कर दिया। तबसे उनके नाम पर कोई अलग चीज नहीं है। मगर जो लोग संघ में रहे और जो उस सिद्धान्त से सहमत हैं वे अपनी शक्ति भर इस काम को जैसे भी हो, चला रहे हैं। जिस दिन महात्माजी का स्वर्गवास हुआ, उस दिन मैं वर्धा ही में था और उसी दिन यहां आया था। यहां आने के दो-तीन घंटे बाद रेडियो से खबर मिली और उसी रात मुझे दिल्ली वापस जाना पड़ा। तत्काल उसके चन्द दिनों बाद उस सम्मेलन के लिए फिर यहां आना पड़ा, जिसके लिए पहले आया था। महात्माजी का विचार था कि ३-४ फरवरी को यहां पर देश में जितने रचनात्मक काम करनेवाले थे, उनका सम्मेलन करके इस बात पर विचार किया जाय कि आगे से किस प्रकार रचनात्मक काम चलाये जायं। इसके लिए महात्माजी ने मुझसे कहा था कि मैं

२ तारीख को यहां पहुंच जाऊं। दो दिन पहले मैं यहां आया। दुर्भाग्यवश ३० जनवरी को ५ बजे शाम को महात्माजी की मृत्यु हो गई। अतएव वह सम्मेलन निश्चित समय पर नहीं हो सका। वह कुछ दिनों के बाद हुआ। उसमें सरदार वल्लभभाई भी आये, जवाहरलालजी आये और दूसरे भाई भी आये। उस वक्त यह सोचा गया कि महात्माजी का जो कार्य-क्रम सर्वोदय का था, उसे चलाना चाहिए। यह भी विचार हुआ कि उसके लिए एक संस्था कायम की जाय। कुछ लोगों का विचार था कि उसकी जरूरत नहीं है, क्योंकि वह एक सम्प्रदाय-जैसी चीज बन जायगी, जो हानिकारक होगी। इसलिए 'सर्वोदय समाज' को वह रूप नहीं दिया गया, जिसका कोई खास संविधान हो। यह समझा गया कि जो लोग महात्माजी के विचारों से सहमत हैं, उनके अनुसार काम करते हैं, वे सब इसके सदस्य समझे जायंगे और उनका एक भाईचारा हो, जिसमें वह सब काम चलता रहे। इसी सिलसिले में एक साल के बाद अप्रैल में राऊ में एक सम्मेलन हुआ।

यहां जो काम हो रहा है, उसके बारे में कुछ कहने का मैं अपने को अधिकारी नहीं मानता हूं, क्योंकि जो काम में लगे हैं, वे ही इसके अधिकारी हैं कि कुछ राय दे सकें। जो दूर से देखते हैं, वे अधूरा ही देखते हैं, उनको इसका पूरा ज्ञान नहीं हो सकता कि यहां क्या हो रहा है। इसलिए मैं इतना कह सकता हूं कि यह काम अत्यन्त आवश्यक है। इसमें चाहे कोई आवे, न आवे, जो इसमें रहे, वह इस काम को चलाता रहे और अगर मेरे जैसे लोग इसके अन्दर काम नहीं कर सकते हैं, उनका धर्म होता है कि वे आपके काम में कुछ प्रोत्साहन दें। और अगर कुछ न करें, तो कम-से-कम आपके काम में वे किसी तरह रोड़ा न अटकावें, बाधा न दें। आप सब जो इस कार्यक्रम का बहुत-कुछ अनुभव प्राप्त कर चुके हैं इसे और बढ़ावें। महात्माजी तो चले गये हैं, मगर उनकी कृतियां मौजूद हैं और अगर कोई मनुष्य शरीर धारण करके आता है, तो शरीर से वह सदा नहीं रहता; लेकिन उसकी कृतियां रहती हैं। उसी तरह महात्माजी शरीर से चले गये हैं मगर जो काम वह कर गये हैं, वे

रहेंगे। उनकी कृतियों को कायम रखने के लिए जो जहां हों, वे त्याग के साथ, श्रद्धा के साथ काम करें। यही एक चीज है जो उनकी कृतियों को आगे बढ़ाने में मददगार होगी। यों तो उन कृतियों में इतनी शक्ति है, उनके काम ऐसे हैं, उनके सिद्धान्त ऐसे हैं, नियम ऐसे हैं, कि वे कृतियां बढ़ेंगी, इसमें कोई शक नहीं है।

मैं देखता हूं कि इन चीजों में हमको अन्धकार मालूम देता है। ऐसा लगता है कि हम एक-एक करके उनको छोड़ते जा रहे हैं। वास्तव में ऐसी बात है, इसे हम नामंजूर नहीं कर सकते। मगर वह चीज अपने स्थान पर है। इसमें कभी कमी होती है, कभी ढिलाई पड़ती है। पर इसको कायम रखना है। २४ वर्ष से अधिक हुए, सर ग्रेग ने महात्माजी के काम को देखा। उस वक्त इतनी संस्थाएं नहीं थीं। सिर्फ खादी का काम होता था, इस तरह से ग्रामोद्योग का काम तब आरम्भ नहीं हुआ था। घानी तेल, पूर्ण चावल आदि चीजें हमारे सामने उस वक्त नहीं आई थीं। मगर खादी और चरखे को देखकर ही उन्होंने कहा कि किसी-न-किसी दिन ये चीजें आयंगी। वह किसी अमरीकन कंपनी के इंजीनियर थे। एक बार हमारे बिहार में वह एक गांव में गये। उन्होंने देखा कि चक्की से आटा पीसा जा रहा है, सिलौटी पर मसाला पीसा जा रहा है, घर में रसोई बन रही है और रोटी पक रही है। इन सबको देखकर उनको बहुत आश्चर्य हुआ। ये चीजें घर-घर में होती हैं। उन्होंने कहा कि हम चाहते हैं कि इन चीजों को भारतवर्ष ५० वर्ष कायम रखे। ५० वर्षों के बाद संसार फिर इन चीजों की ओर लौटेगा। अभी तो ये चीजें नहीं टिकेंगी। जिस तरह से संसार में कल-पुर्जे बनाये गये और अब उसमें फेल हो गये हैं, उसी तरह हो सकता है कि कुछ दिनों के लिए घर में आटा पीसना और रोटी बनाना लोग भूल जायंगे। मगर यदि चक्की कायम रह गई तो संसार को यह फिर मिलेगी, और मैं चाहता हूं कि भारत इसे कायम रखे, जिससे बाद में चक्की का आविष्कार करने की जरूरत न पड़े। वही बात इस वक्त मैं कहता हूं। मैं उसी तरह के विचार वाला हूं। मैं मानता

हूं कि यह हो सकता है कि जो होड़ चल रही है उसमें इस तरह की चीजें बुझ जायं, दूसरी बातों के सामने उनकी कदर न रहे। मैं यह भी मानता हूं कि जो असर है उसे भी लोग अन्य बातों में भुला सकते हैं। मगर मेरी यह भी मान्यता है कि इसमें जो एक प्रकार की शक्ति है उस शक्ति से वह बच सकती है, गायब नहीं हो सकती। आज हम देखते हैं कि एक बड़ा कारखाना है, उससे कितना काम हम लोग करते हैं। यहां वर्धा शहर में एक जगह पावर हाउस है, जहां कोयला जलाया जाता है और उससे बिजली पैदा होती है, जो शहर को जगमगा देती है और हम लोग आश्चर्य में पड़ जाते हैं। मगर हम यह भूल जाते हैं कि इतनी बत्ती जलाने के लिए हमें इतना खर्च करना पड़ता है। हमींको नहीं, संसार को भी। कोयले के बनने में न मालूम लाखों वर्ष लगते हैं और तब कोयला तैयार होता है। इतने लाख वर्ष में बने कोयले को हम फूंक देते हैं। मगर हम यह भूल जाते हैं कि इस कोयले की जगह हम दूसरा कोयला पैदा नहीं कर सकते। आज की नई सभ्यता में पहले की संचित चीजों को धुआंधार खर्च कर रहे हैं। हो सकता है कि कोई समय आ जाय जब विज्ञान के जरिये इन चीजों को भी लोग पैदा करने लग जायं। मगर अभी तक हम केवल खर्च ही कर रहे हैं—जो चीजें प्रकृति ने पहले तैयार करके हमें दी हैं, उनको हम खर्च कर रहे हैं, उनको हम बढ़ा नहीं रहे हैं।

महात्माजी की शिक्षा में जो चीजें हैं, उनको देखिए। अभी आपने जो दीप जलाया, उसको आप बढ़ा सकते हैं, कितनी ही दूर तक बढ़ाकर ले जा सकते हैं। कोयला न जलाकर हम जब लकड़ी जलाते थे तो उसे हम पैदा भी कर लेते थे। वह सदा के लिए खतम नहीं हो सकती। एक वृक्ष काटकर दूसरा लगा देते थे और इसी तरह हमारा काम चलता था। आज हम एक तरह से प्रवाह में बहते जा रहे हैं। मालूम नहीं, हम इसे रोक सकेंगे या नहीं। मेरा अपना विश्वास है कि महात्माजी ने जो रास्ता बतलाया है, उस रास्ते पर अगर चलेंगे तो उसे रोकने में हम कामयाब हो सकते हैं। अपनी कमजोरी से उसे हम न रोक सकें, यह दूसरी बात है।

मगर इसमें इतनी ताकत है कि उसे हम रोक सकते हैं। अगर आप इसे जारी रखेंगे, तो एक समय आयगा जब आप फिर संसार को इन चीजों को दिखलायंगे और संसार के लोग इसे कबूल करेंगे। मैं इन प्राचीन विचारों का समर्थक हूं और प्रगतिशील विचारों के साथ नहीं चलनेवाला हूं, यह मेरा मानना है। मगर प्रगति क्या है, इसमें भी लोगों का अलग-अलग मत हो सकता है। हम जिसको प्रगति कहते हैं, हो सकता है कि दूसरे उसको प्रगति न समझते हों, उसको एक प्रतिक्रियावादी चीज समझते हों। उसी तरह से, जिसे दूसरे प्रगति समझते हैं, उसे हम प्रगति नहीं समझते। यह तो अपना-अपना विश्वास है। हम चाहते हैं कि सब चीजों को महात्माजी के मौलिक सिद्धान्तों की कसौटी पर जांचकर उसका अर्थ निकालें और काम करें।

सेवाग्राम में कार्यकर्त्ताओं
की सभा में दिया गया भाषण।
३१-१२-५०

८

शक्ति का स्रोत

आज महात्मा गांधी की पुण्य-तिथि है। हम इसलिए इकट्ठे हुए हैं कि ईश्वर की प्रार्थना करें और महात्माजी का गुण-गान करें और जो-कुछ उन्होंने हमको सिखाया-बताया, उसको याद करें। महात्माजी ने देश को बहुत-कुछ बताया, बड़ी शक्ति दी; पर उन्होंने स्वयं वह शक्ति कहां से पाई, जिसका उन्होंने सारे देश में और संसार में वितरण किया ?

वह मानते थे और बार-बार कहते और लिखते थे कि उनकी सारी शक्ति ईश्वर की दी हुई है। रामनाम की शक्ति है और उन्होंने जो-कुछ किया, उसीके बल से किया। अन्तिम शब्द भी जो उनके मुंह से निकला, वह था—'हे राम'। तुलसीदास ने लिखा है—

जन्म-जन्म मुनि यत्न कराहीं।
अन्त राम मुख आवत नाहीं॥

बहुत जन्मों की तपस्या के बाद भी अन्त में जब मनुष्य का शरीर जाता है तो उस वक्त वह ईश्वर को भूल जाता है। यह पुण्य और तपस्या का फल है कि किसी को अन्तिम समय में ईश्वर का स्मरण आ जाय और उसका नाम वह ले ले। महात्मा गांधी ने अपनी सारी जिन्दगी में जो तपस्या की, जो काम किया उसे उन्होंने संसार के लिए दे दिया और अन्त में ईश्वर का नाम लेते हुए वह शरीर को छोड़कर ईश्वर में जाकर मिल गये।

आज इस देश में कुछ ऐसी हवा-सी चल पड़ी है कि लोग ईश्वर

का नाम लेने से थोड़ा डरते हैं। अगर डरते नहीं तो शरमाते हैं और अगर कभी ईश्वर का नाम लिया भी तो कंठ से ऊपर ही रहता है। जिस भावना से महात्माजी भगवान का नाम लिया जाना चाहते थे, उससे लोग नहीं लेते। यह इस बात से स्पष्ट है कि यदि हम लोग भगवान का नाम उस भावना से लेते तो हम भगवान को कभी न भूल सकते। सोचकर देखें तो जितनी विपत्तियां आज हमारे ऊपर हैं, जो मुसीबतें हमारे ही देश में नहीं, सारे संसार में हैं, सबके मूल में यह बात है कि हम अपने को नहीं पहचानते, दूसरे को नहीं पहचानते और यह नहीं जानते कि ईश्वर एक है और वह सबमें है। अगर लोग इस सत्य को जानते तो यह लड़ाई-झगड़ा क्यों होता ? हम इस चीज को भूल जाते हैं, तभी एक-दूसरे के साथ झगड़ा करते हैं। यह समझना भी भूल है कि कोई किसी को मारता है। देखने में ऐसा लगता है कि कोई दूसरे के शरीर को नष्ट कर रहा है, वास्तव में उसका शरीर अपने संस्कारों और कर्मों के कारण नष्ट होता है। महात्माजी चाहते थे कि सब ईश्वर को पहचानें और याद रखें। इससे उनका सारा जीवन सुसंस्कृत हो जायगा और वे शुद्ध और पवित्र हो जायंगे। फिर किसी बात की चिन्ता करने की जरूरत नहीं रह जायगी। जब-कभी हम लोग महात्माजी के सम्बन्ध में बोलते हैं, सोचते हैं कि किस तरह से उन्होंने देश को जगाया-बढ़ाया। यह सब उन्होंने किया, इसमें तो कोई शक नहीं और हमारे ही लिए नहीं, सारे संसार के लिए उन्होंने यह किया, पर हम जब यह सोचते हैं कि वह इसी जगह पर जन्मे थे और यहीं के लोगों को उन्होंने शिक्षा दी, तो लगता है कि हम महात्माजी के रास्ते पर कुछ दूर तक तो जा सकते हैं और अपने को और दूसरों को पुनीत बना सकते हैं। आज का दिन ऐसा है कि हमारे सामने जो बात उन्होंने रखी थी, उस पर विचार करें, मनन करें, उसे सोचें-देखें और इस पवित्र स्थान पर और किसी खयाल को मन में न आने दें। इतना अगर साल में एक दिन भी कर लें, तो मैं समझता हूं कि हमारा बेड़ा पार हो जायगा।

महात्माजी ने सामूहिक प्रार्थना की प्रथा निकाली, जिसे शायद पुरानी प्रथा होने पर भी लोग भूल गये थे। इससे एक-दूसरे को सहारा मिलता है, एक-दूसरे को बल मिलता है। अगर हम लोग किसी-न-किसी तरह से इस चीज को जारी रखें, तो हमारा विश्वास है कि इससे भी हमारा और देश का कल्याण होगा।

राजघाट,
३१-१-५३

६

कार्य के विविध पहलू

गांधीजी ने इस देश में अपने बहुत वर्ष बिताये और सारे देश का उन्होंने कई बार दौरा किया। करोड़ों पुरुषों और स्त्रियों से उनकी मुलाकात हुई। कितने आदमी यहां के आश्रमों में आकर रह गये और उनके भाषणों को सुनकर, उनके लेखों को पढ़कर, न मालूम कितने लोगों ने लाभ उठाया। मगर यह बात हमको माननी होगी कि जो राजकीय काम उन्होंने उठाया उसमें से देश को स्वराज्य दिलाने के काम में लोगों ने अधिक दिलचस्पी ली, अधिक रस लिया और स्वराज्य के बाद भारत में जिस तरह की समाज-रचना की उनकी अभिलाषा थी, उसके सम्बन्ध में लोगों ने कुछ कम दिलचस्पी ली। अगर हम यह कहें कि बहुतेरों ने इसको नहीं समझा, तो यह अत्युक्ति न होगी। आप जो लोग इसमें लगे हुए हैं, उनकी बात मैं नहीं कहता, मगर बाहर के लोगों में थोड़े हैं, जो महात्माजी के समाज के चित्र को धुंधले तरीके से भी अपनी आंखों के सामने रख सके हों। अगर किन्हीं लोगों के सामने वह चित्र आता भी है तो बहुत कम हैं, जो उससे खुश होते हैं। कुछ लोग ऐसे हैं जो उसको पसन्द भी नहीं करते। आज की दुनिया एक तरफ चल रही है और गांधीजी दूसरी तरफ चलाना चाहते थे। बात दरअसल यह है कि गांधीजी, जो कुछ इस वक्त की चीजों में अच्छाई है, उसको छोड़ना नहीं चाहते थे मगर उनके दिमाग में समाज का विचार कुछ दूसरा ही था, जो आज के समाज से भिन्न हो सकता है। ऐसी अवस्था में लोग उसको ठीक तरह नहीं समझ पाये, और

जिन्होंने थोड़ा-बहुत समझा, उन्होंने अगर उसे आग्रहपूर्वक स्वीकार नहीं किया तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इसलिए आप लोग जो इसपर विश्वास रखते हैं कि उनका काम मुश्किल तो है, लेकिन महत्त्व रखता है, उनके लिए मैं यही कहूंगा कि लोग कुछ भी कहें, कुछ भी सोचें, वे आपके काम को पसन्द करें या न करें, आपको प्रोत्साहन दें या न दें, लेकिन आपको काम करते जाना है और आपको अपना काम करके उसका नतीजा दिखलाकर दूसरों को अपनी तरफ खींचना है। वाद-विवाद के जोर पर, बहस करके आप उन्हें अपनी तरफ नहीं खींच सकते। वे जब तराजू के एक पलड़े पर आज की चमक-दमक की चीजें रखेंगे और दूसरी तरफ खादी को रखेंगे और समझेंगे कि चमकीले कपड़े से खादी अच्छी है तो उसको वे पसन्द करेंगे। अर्थात् अनुभव से जब उन्हें खादी की खूबी मालूम हो जायगी तभी उसको पसन्द करेंगे। यह काम आपके सिर पर है। महात्माजी का इतना प्रभाव था और उनका इतना बड़ा व्यक्तित्व था कि जो कहते थे उसे अगर लोग नहीं समझते थे, दिल से नहीं मानते थे तो भी कुछ देर के लिए उसे कर लेते थे, और अब वह बात नहीं है। अब जो काम करेंगे उससे थोड़ा विश्वास होगा, और जब समझ में आयगा तभी वह काम करेंगे। किसी के कहने से अब कोई कुछ करनेवाला नहीं है। इसलिए मैं यह चाहता हूं कि आपका काम जोरों से चले।

अभी श्रद्धेय जाजूजी ने कहा कि जो लोग इस काम में लगे हुए हैं, उनको संतोष होना चाहिए। लेकिन मेरे-जैसे लोगों को उससे असंतोष ही रहना चाहिए। मैं आपसे कहता हूं कि मुझे असन्तोष बहुत है, इसलिए नहीं कि काम कम होता है या कुछ लोग इसके महत्त्व को नहीं समझ रहे हैं, या इस तरफ हमारा ध्यान नहीं जाता है और अगर जाता है तो इस तरीके से कि जैसे नहीं जाना चाहिए। हम समझते हैं कि किसी कमजोरी की वजह से काम नहीं होता है, तो असन्तोष की बात नहीं। लेकिन जब हम समझते हैं कि यह काम ठीक है, फिर भी हम उसे नहीं

कर पाते, तो असन्तोष और अधिक हो जाता है।

गांधीजी के कार्य के कई पहलू थे, उसमें कई बातें थीं। जब हम आपस में बैठते हैं तो एक किस्सा कहा करते हैं। किसी गांव में एक हाथी गया, जहां कई अन्धे थे। उन्होंने हाथी नहीं देखा था। उनमें से किसी ने हाथी की पूँछ पकड़ी तो समझा कि हाथी वैसा ही होता है। किसी ने पांव पकड़ा तो समझा कि हाथी खंभे के समान होता है। किसी ने पीठ को छुआ तो उसको हाथी दूसरे ही किस्म का मालूम हुआ। हाथी कैसा होता है यह किसी को मालूम न हो सका। तो गांधीजी के कार्य के जितने पहलू थे उन सबका उद्देश्य एक समाज का संगठन करना था, उसको हम नहीं देखते। उनके कार्य के एक अंश को लेकर हमारा विश्वास हो जाता है कि वही असली चीज है और उसी पर हम जोर देने लग जाते हैं। दूसरे लोग दूसरी चीज को ठीक समझते हैं और उस पर जोर देने लगते हैं। नतीजा यह होता है कि आंशिक चीजको लेकर जोर देते हैं और दूसरी चीजों की तरफ हमारा ध्यान नहीं जाता। इसका नतीजा यह होगा कि जैसा गांधीजी चाहते थे वैसा नहीं हो सकता। मैं समझता हूं कि एक आदमी हरएक चीज को नहीं कर सकता और उसे किसी एक चीज में खासियत हासिल करनी होगी; लेकिन साथ-साथ उसका और चीजों से क्या संबंध है, उसे सामने रखना है। स्पेशलाइज़ेशन का यही अर्थ है। एक चीज पर हम जोर देने लगते हैं और दूसरी चीजों को भुला जाते हैं। यह स्पेशलाइज़ेशन नहीं है। मिसाल के तौर पर गांधीजी चाहते थे कि देश में मुसलमान, ईसाई, पारसी, सिख, हिंदू—सबमें मेल होना चाहिए। यह सिद्धान्त की बात थी, इसे सबको मानना चाहिए। इसी तरह गांधीजी ने कहा था—सूर्य जैसे सब ग्रहों में केन्द्र माना जाता है, वैसे ही चरखा सब ग्रामोद्योगों का केन्द्र माना जाय। अब हम चरखे ही को ठीक मानें और चीजों को भूल जायं, तो हम कह सकते हैं कि यह गांधीजी के कार्यक्रम के सही मानी नहीं हुए। उसी तरह एक-दूसरे का आपस में मेल होना जरूरी चीज है; लेकिन हम उसी पर जोर दें और दूसरी चीजों पर

ध्यान न दें, तो मैं कहूंगा कि वह भी ठीक नहीं। उसी तरह से तालीमी संघ का काम है। तालीमी संघ के काम का, जैसा आशादेवी ने कहा, समग्र चित्र बापू के सामने था, जिसको सारे समाज का चित्र अपने दिमाग में रखकर उन्होंने तैयार किया था। इस तरह की बात तो ठीक है। अगर वह काम पूरा हो तो उसके माने यह हैं कि सब काम पूरे हो जाते हैं। लेकिन हम कहें कि किसी गांव में बैठकर हमें उसी को बढ़ाना है, तो इतना ही काम हमारा नहीं है। जो रचनात्मक काम में लगे हुए हैं वे उसके एक-एक अंश को लेकर भाग रहे हैं और दूसरी चीजों पर जोर नहीं देते हैं। इसी तरह हमारी सरकार की नीति गांधीजी की नीति से १६ आने नहीं मिलती है। आपका यह कहना कि मैं गवर्मेंट का हेड हूं और गवर्मेंट की शिकायत करता हूं, ठीक होगा। लेकिन बात ऐसी है कि गांधीजी जो कार्यक्रम रखना चाहते थे, उसपर गवर्मेंट नहीं चल रही है—न केन्द्रीय सरकार चल रही है और न किसी प्रांत की सरकार चल रही है। हम उनकी एक चीज भी नहीं कर पाये हैं। कुछ थोड़ा-बहुत हमने इधर-उधर कर लिया है; लेकिन उनके ध्येय को सामने रखकर हम आगे नहीं बढ़ रहे हैं।

गांधीजी का समाज का जो चित्र था, वह हमारी सरकार के साम्ने नहीं है। इस वक्त संसार में जो चित्र है, उन्हीं में थोड़ा-बहुत परिवर्त्तन करके हम भी चल रहे हैं। उसमें आमूल परिवर्त्तन हम नहीं करना चाहते। हम चाहते हैं कि जो समाज की रचना और देशों में है, उसतक हम कैसे पहुंचें। उसमें हम कुछ भारत की खासियत भी रखना चाहते हैं, यह ठीक है; लेकिन जैसा गांधीजी चाहते थे वैसा चित्र हमारे सामने नहीं है। तो जो चीज ही हमारे सामने नहीं. उस पर हम काम कैसे कर सकते हैं? आपको ऐसा लगता है कि गवर्मेंट आपकी सेवा नहीं ले रही है, यह स्वाभाविक है। लेकिन मैं यह चाहता हूं कि आप गवर्मेंट पर ही भरोसा न करें। हां, आपको जितनी मदद गवर्मेंट से मिले, ले लीजिये, जो आप दबाव डालकर कराना चाहें, करा लें। कोई भी सरकार दबाव

डालने से ही रास्ते पर आती है। लेकिन आप स्वतन्त्र रहकर काम करें तभी यह काम ठीक चलेगा। गांधीजी ने कहा था कि इन संस्थाओं के लिए वह ब्रिटिश सरकार से कोई मदद नहीं लेंगे, क्योंकि वह मानते थे कि उनकी मदद लेने से उनके रास्ते पर उनको चलना पड़ेगा। वही चीज आज भी है। अगर आपने सरकार पर भरोसा किया तो उसकी नीति पर आपको चलना होगा; लेकिन आपको उसकी नीति पर नहीं चलना है, आपको तो उसकी नीति को बदलवाना है। जो-कुछ भी आप काम करें, उसका फल दिखलाकर उनको मजबूर कीजिये कि वह आपके रास्ते पर आवें।

सेवाग्राम में रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं और आश्रमवासियों के बीच दिया गया भाषण।
४-९-५१

१०

गांधीजी के सिद्धान्त का मर्म

आज से करीब ३५ वर्ष हुए होंगे जव महात्मा गांधी उड़ीसा में अकाल-पीड़ित अस्थिपंजरों को देखकर बहुत द्रवित हुए थे और उन्होंने कहा था कि एक प्रकार से दरिद्रनारायण के दर्शन उनको यहां पर ही मिले थे। उन दिनों के और आज के भारतवर्ष में बहुत अन्तर पड़ गया है, मगर हम आज भी यह नहीं कह सकते हैं कि देश से दुष्काल को हम बिल्कुल निकाल सके हैं और भूख के कारण कहीं भी कोई हिन्दुस्तानी आज नहीं मर सकता है। हम चाहते हैं कि इस देश में लोग सुख से रहें, भूख से न मरें, बीमारी हो तो उससे भी बचने का साधन उनके पास उपस्थित रहे और शिक्षा इत्यादि की सुविधाएं भी उनको मिलें। इसी ध्येय को सामने रखकर इस समय सारे भारतवर्ष में अनेकानेक प्रकार की योजनाएं चल रही हैं और इसका प्रयत्न किया जा रहा है कि हमारे लोगों का जीवन स्तर ऊंचा हो। यह जरूरी है, क्योंकि जबतक मनुष्य को भर पेट भोजन न मिले, उसके पास आराम के लिए कोई सुरक्षित स्थान न हो, शरीर ढकने के लिए उसके पास वस्त्र न हो, तबतक और चीजों पर वह ध्यान नहीं लगा सकता। ये चीजें उसके पास होनी चाहिए और तभी वह और बातें सोच सकता है। इसीलिए महात्मा गांधी ने एक मर्तबा यह भी कहा था कि अगर भूखे आदमी को ईश्वर की भक्ति करने को कहा जाय तो वह नहीं कर सकता, वह तो ईश्वर को रोटी के रूप में ही देख सकता है, उसके सामने ईश्वर का कोई दूसरा रूप नहीं हो सकता। अपने देश से इस तरह की कमी

दें तो सब लोग सुख से रहें।

थ ही हमको यह भी देखना है कि उस रोटी और सुख की तलाश में हम कहीं ऐसे न बह जायं कि और सब चीजों को हम बिल्कुल ही भूल जायं। आज संसार की जैसी प्रगति है और जिस तरफ संसार का रुख है, उसको हम देखते हैं तो हम भी उसी रास्ते पर चलना चाहते हैं और उन्हीं चीजों को अपने देश में लाकर स्थापित करना चाहते हैं, जिससे हमारे देश के लोगों को वे सभी चीजें उपलब्ध हो जायं, जिनको आज लोग सुख का साधन मानते हैं। हमको यह भी याद रखना है कि अन्ततः सुख बाह्य पदार्थों से ही नहीं प्राप्त हो सकता है। उसके लिए तो दूसरा ही साधन है और उसके लिए दूसरी भावना है। इसलिए हमारे ऋषियों ने हमको सुख से वंचित नहीं किया, मगर दैहिक सुख को, शारीरिक सुख को, सबसे ऊंचा स्थान भी नहीं दिया। उन्होंने आहार-विहार के आदर्श हमारे सामने रखे, जिनसे हम समझ सकें कि सुख क्या है और यह न भूलें कि दैहिक सुख ही सुख नहीं, उसके ऊपर और प्रकार का सुख है, जो सच्चा सुख या आनन्द कहा जा सकता है।

आज भारतवर्ष में जब हम महज रोटी बांटने के काम में लगे हुए हैं, इस चीज को भी हमको भूलना नहीं चाहिए और अगर हम इसको भूल गये तो हमारी हालत फिर और देशों की तरह होकर रहेगी और हममें कोई विशेषता नहीं रह जायगी। हम तो अपना ही मध्यम मार्ग लेना चाहते हैं और उसी मध्यम मार्ग से चलना चाहते हैं, जिसमें दैहिक सुख का बहिष्कार न कर दें—मगर साथ ही उसे अपने जीवन का सर्वस्व न बना लें।

हम आज देख रहे हैं कि दोनों प्रकार के अनुभव संसार के सामने हैं। रोटी की कमी और भुखमरी का दृश्य तो हम अपने ही देश में देख सकते हैं और उसी तरह से खाते-खाते मरने का दृश्य भी हम इसी देश में देख सकते हैं। हम चाहते हैं कि सबको अन्न मिले, पर कोई खाते-खाते न मरे। खाना ही जीवन का ध्येय नहीं रहना चाहिए। हमारे देश की यही परम्परा रही है और यही हम चाहते हैं। आज हम देखते हैं कि जहां इस चीज को हमने छोड़ दिया या भुला दिया, वहां सब साधन होते हुए भी लोग सुखी नहीं हो

सकते। इसका अनुभव, इसका प्रमाण आपको अगर चाहिए तो आज भी संसार में ऐसे देश मौजूद हैं, जहां के लोग बता सकते हैं कि जितने प्रकार की सम्पत्ति आज संसार में हो सकती है वह सब उनके पास होते हुए भी सबसे अधिक लोग आत्म-हत्या करते हैं तो उसी देश में और सबसे अधिक पागलखाने में लोग जाते हैं तो उसी देश में और सबसे अधिक अगर पारिवारिक जीवन में सुख की कमी होती है तो उसी देश में। हम चाहते हैं कि वैसे देश की नकल करके हम एक विकृत रूप अपने देश में कायम न कर दें, बल्कि अपने रास्ते पर चलकर एक ओर भूख से लोगों को बचावें और दूसरी तरफ दूसरे प्रकार का विचार भी पैदा करें, जिससे सच्चे सुख का अनुभव हम कर सकें।

महात्मा गांधी उन्हीं संतुष्ट लोगों में से थे। इसीलिए उन्होंने जो कुछ बताया, वह उसी तरीके से बताया, जिसमें हम उन चीजों के गुलाम न होकर उनके मालिक बनकर रहें, वे चीजें हमारे काबू में, हमारे नियन्त्रण में, रहें, न कि उन चीजों का हम पर काबू हो जाय। इस चीज को अगर हम याद रखेंगे और इसे याद रखते-रखते अगर हम सब काम करते जायंगे, तो हम गांधीजी की मूर्ति को रखने के योग्य अपने को प्रमाणित कर सकेंगे। इस देश में मूर्तियों की कमी नहीं है। यहां देवी-देवताओं की मूर्तियां बहुत हैं और रोज बहुत-सी बनती भी जा रही हैं। हम चाहते हैं कि इन मूर्तियों के पीछे जो भावना है उसको याद कर लोग अपने जीवन को सुधारें। महात्मा गांधी का जीवन हमारे सामने आता है। इस देश में करोड़ों लोग आज भी मौजूद हैं, जिन्होंने उनको देखा है, जिन्हें उनका वचन सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, बहुत से ऐसे लोग भी हैं जिनको उनके साथ रहने का भी सौभाग्य मिला था। इसलिए इस देश पर और भी अधिक जिम्मेदारी आ जाती है कि हम अपने जीवन को ऐसा बनावें, जिसमें संसार समझ सके कि गांधीजी क्या चाहते थे। आज दूसरे देशों के बहुतेरे लोग यह जानना चाहते हैं कि गांधीजी के देश के लोग गांधीजी ने जो-कुछ सिखाया है, जो-कुछ बताया है, उसपर कहां तक चलने का प्रयत्न कर रहे हैं। हमको

आज संसार उसी दृष्टि से देखना चाहता है। और कुछ नहीं तो कम-से-कम उस रास्ते पर चलने का प्रयत्न करके संसार को हम रास्ता दिखला सकते हैं। मेरा अपना विश्वास है कि अगर हम कुछ भी करना चाहते हैं, जो करने योग्य है, जिसमें हमको कुछ परिश्रम करना चाहिए, जिसके लिए कुछ त्याग करना चाहिए, तो वह यही चीज है, दूसरी चीज नहीं है; क्योंकि यदि गांधीजी के सिद्धान्त का मर्म हमने स्न्यं नहीं समझा और समझकर उसको चलाने का प्रयत्न नहीं किया तो दूसरों को हम क्या दे सकते हैं ?

गांधीजी को सबसे पहले जिनका दरिद्रनारायण के रूप में दर्शन हुआ था उनको हम याद रखें और उनके बताये रास्ते पर चलकर अपने जीवन को सार्थक करें।

पुरी में गांधीजी की मूर्ति का अनावरण
करते समय का भाषण।
२४-३-५५

११

गांधीजी की सिखावन

यद्यपि अभी हमारे देश में शिक्षा-क्रम कुछ ऐसा चल रहा है, जो आज की परिस्थिति के साथ पूरा मेल नहीं रखता, तो भी शिक्षा का जितना प्रचार हुआ है और होता जा रहा है, वह एक तरह से अच्छा ही है और मैं तो इस आशा में हूं कि ये जितनी शिक्षा-संस्थाएं हैं, जब शिक्षा-क्रम बदल जायगा तो और भी अधिक उपयोगी हो जायंगी और उनके द्वारा जो नागरिक तैयार किये जायंगे, वे देश के सच्चे नागरिक होंगे।

महात्माजी ने हमारे देश को जो शिक्षा दी, वह एक प्रकार से केवल देश के लिए ही नहीं, सारे संसार के लिए थी। उन्होंने केवल मौखिक शिक्षा नहीं दी, बल्कि अपने सारे जीवन को उन्होंने किस तरह से इस देश के लोगों के बीच में बिताया और इतने लोगों को उनके साथ संपर्क में आने का सौभाग्य मिला, उससे यह कहा जा सकता है कि यहां के लोगों के जीवन पर उनका कितना असर पड़ा है। वह प्रभाव आज भी देखा जा सकता है। एक-ही बात नहीं, हमारे जीवन के किसी कोने को भी उन्होंने अछूता नहीं छोड़ा। हमारे सामने जितने प्रश्न या मसले आते हैं, सबका उन्होंने किसी-न-किसी रूप में जवाब दिया। यह बात सच है कि हम यह नहीं कह सकते हैं कि हम उनके बताये रास्ते पर, या उनके जीवन-काल में या उनके स्वर्गवास के बाद भी, चल रहे हैं, मगर जो थोड़ा-बहुत भी चल सके और जो थोड़ा भी कार्य रूप में उनका अनुसरण किया, उसका फल आज हम स्वराज्य के रूप में पा चुके हैं।

यह ठीक है कि महात्मा गांधी आज होते तो संसार को शिक्षा देते,

मौखिक तरीके से नहीं, पर अपने तरीके से। जैसे उन्होंने लोगों को तैयार किया और स्वराज्य प्राप्त करवाया, उसी तरह संसार के सामने बड़ी-बड़ी समस्याएं आ रही हैं और संसार के बड़े-बड़े लोगों को चिन्तित कर रही हैं। उनको हल करने के भी वह रास्ते बताते। हमारे देश की यह एक सनातन काल से बड़ी खूबी मानी गई है कि हम बड़ी-से-बड़ी बात को थोड़े में कह देते हैं, और बड़े-से-बड़े काम के लिए सीधा रास्ता निकाल लेते हैं। महात्माजी ने छोटी-छोटी बात कहकर बड़े-से-बड़ा काम करवाया और सफलतापूर्वक करवाया।

आज संसार को इसकी ज़रूरत है कि जो शक्ति मनुष्य के हाथ में आ गई है, उस शक्ति को वह संयमित रूप से काम में ला सके। यह शक्ति उनमें आनी चाहिए। राम और रावण का भेद और अर्थ यही था कि राम में संयम और नियंत्रण था और इसके कारण उनकी शक्ति अच्छे काम में लगती थी। रावण भी बड़ा तपस्वी था, बड़ा विद्वान् था और कहा जाता है कि उसके समय में रावण जैसा विद्वान् कोई भी नहीं था, मगर यह सब होते हुए भी उसके पास संयम नहीं था। उसके पास नियंत्रण करने की शक्ति नहीं थी, जो राम में थी। इसलिए वह सारे संसार के सामने बुराई के प्रतीक के रूप में आया और राम अपने संयम के कारण राम के रूप में आये।

आज मनुष्य ने बड़ी भारी शक्ति प्राप्त कर ली है। वह शक्ति इतनी जबरदस्त है कि मनुष्य चाहे तो इससे अपने को स्वर्ग तक सीधा पहुंचा सकता है। आप सुनते ही होंगे या अखबारों में पढ़ते होंगे कि जल्दी ही वह समय आयगा, जब मनुष्य इस दुनिया से उड़कर दूसरे लोक तक पहुंच सकेगा। आज की प्रगति को देखकर यह नामुमकिन नहीं मालूम देता। इसलिए जो शक्ति आई है, वह तो अनंत है, मगर उसका व्यवहार करना हम नहीं जानते और आज मनुष्य उसको आपस के विरोध में एक-दूसरे को नष्ट-भ्रष्ट करने की तैयारी में लगा रहे हैं। यदि महात्माजी की बात वे सुनें, तो मालूम हो जायगा कि किस तरह से उस शक्ति का प्रयोग देश के बढ़ते उद्भव और उन्नति के लिए किया जा सकता है और किस तरह से आज मनुष्य जो भय का

अनुभव कर रहा है, उसे दूर किया जा सकता है। इसलिए आज महात्माजी कीसीख की आवश्यकता तो सारा संसार अनुभव कर रहा है और मैं तो इस आशा में हूं कि वह दिन आयगा और जल्द ही आयगा जब उनका संदेश—अहिंसा और सत्य का संदेश—संसार में गूंज उठेगा, गूंज ही नहीं उठेगा, बल्कि संसार उसका अनुसरण करेगा। यदि ऐसा नहीं होगा तो कोई नहीं कह सकता कि मानव-जाति का क्या हाल होगा? वह बचेगी या नहीं, यह भी नहीं कहा जा सकता। इसलिए इस देश पर इस बात का बड़ा भार है कि वह इस चीज को जागृत रखे, जहां तक हो सके, अपने जीवन में भी जागृत रखे और जो नई पीढ़ियां आनेवाली हैं, जिनको यह सौभाग्य नहीं होगा कि जीते-जागते गांधीजी को देखा हो, उनकी वाणी को सुना हो, उनको चलते-फिरते देखा हो, उनके कदमों को छुआ हो, उनके लिए भी कोई-न-कोई रास्ता होना चाहिए कि वे उनकी सीख को समझ सकें। इसलिए उनके स्मारक के रूप में यह सब बनना चाहिए। मगर सच्चा स्मारक मूर्त्ति में नहीं, ईंट-पत्थर में नहीं, हृदय में है। जहां तक उसे हृदयंगम कर लेंगे, वह स्मारक दृढ़ बनेगा।

नवलगढ़ में गांधीजी की मूर्त्ति के
अनावरण के समय दिया गया भाषण।
४–४–५५

१२

कल्याणकारी विचार-धारा

गांधीजी क्या चाहते थे, क्या उनके आदर्श थे, किस तरीके से वह देश को और संसार को चलाना चाहते थे, किस प्रकार से समाज का संगठन करना चाहते थे, इसको बहुत कम लोग जानते और समझते हैं। गांधीजी का एक तरीका था कि जो काम उनके सामने आ जाता था उसको वह करते थे। वह इस बात को मानते थे कि मनुष्य का स्वधर्म है कि जो काम उसके लिए सौंपा जाय, उसे वह करे। कुछ सिद्धांतों को उन्होंने अपने जीवन के सिद्धांत माना था और जितने प्रश्न, जितने काम, उनके सामने आते थे, उन सबको उन्हीं सिद्धांतों की तराजू पर वह तोलते और नापते थे। जो खरा निकलता था उसको मानते और करते थे और जो खोटा निकलता था उसको छोड़ देते थे।

गांधीजी इस देश को कहां ले जाना चाहते थे, किस रास्ते पर ले जाना चाहते थे, यह समझने की चीज है। खासकर आज हम इस बात को समझने का प्रयत्न करें; क्योंकि आज हम एक प्रकार से भारत का नया संगठन कर रहे हैं। उसके लिए हमें आज मौका मिला है और कुछ साधन भी हमारे हाथ में आये हैं। हमारे दुर्भाग्य से महात्मा गांधी ठीक ऐसे ही वक्त पर चले गये, जब उनको मौका था कि वह भारत और संसार को अपने रास्ते पर चलाते और उनका अपने विचारों के अनुसार नया निर्माण करते। वे उन महान् तपस्वियों में से थे, जो जो-कुछ करते हैं किसी एक क्षणिक आवेश में आकर नहीं करते, बल्कि सबके पीछे अपना एक

सिद्धांत रखकर करते हैं।

आज संसार में कई विचारधाराएं चल रही हैं और आपस में टकरा भी रही हैं। उनमें महात्मा गांधी की विचारधारा भी एक है, और मेरा अपना विश्वास है कि यदि संसार को जीवित रहना है और आपस के लड़ाई-झगड़े से टुकड़े-टुकड़े नहीं हो जाना है, तो गांधीजी की विचारधारा के अनुसार उसका पुनर्निर्माण करना होगा। गांधीजी की विचारधारा केवल भारत के लिए नहीं, बल्कि सारी दुनिया के लिए है, जिसे लोगों को समझना पड़ेगा। हमें अफसोस होता है कि जब हम इतने नजदीक रहकर, इतने संपर्क में आकर, भी उस विचारधारा को पूरी तरह से नहीं समझ पाये हैं, तो जो लोग दूर रहते हैं वे कबतक और कहांतक समझ सकते हैं। पर ऐसा भी होता है कि चिराग के नीचे अंधेरा रहता है और चारों तरफ उससे प्रकाश मिल जाता है। लेकिन मैं मानता हूँ कि गांधीजी का चिराग ऐसा है कि उसके नीचे भी रोशनी होगी और चारों तरफ के लोगों को भी प्रकाश मिलेगा।

हमारा क्या कर्त्तव्य है, हमें यह सोचना है। हम बहती हुई धारा में पड़कर अगर बह जायंगे तो उस विचारधारा को नहीं ग्रहण कर सकेंगे। जो आज दूसरी ओर से धाराएं भारत में आकर टकरा रही हैं, उनमें गांधीजी की धारा की आज एक टक्कर होनेवाली है और हो रही है। ऐसी दशा में जिस हद तक हम अपने को गांधीजी की धारा में रख सकेंगे वह हमारे लिए ही नहीं, बल्कि सारे संसार के लिए बड़ा शुभकर रहेगा। अगर हम भी बह गये, तो दूसरों से आशा करनी पड़ेगी कि वे आकर हमारा और अपना उद्धार करें। गांधीजी की विचारधारा में क्या अनोखी बातें थीं, कौन-सा सिद्धांत था, जिसको लेकर वह सारे संसार को नये संगठन में जोड़ना चाहते थे? उन्होंने दो शब्दों में उस सिद्धांत का नाम दिया था 'सत्य और अहिंसा'। कहने के लिए तो ये दो शब्द हैं, मगर इन दो शब्दों के अन्दर आजतक जितनी दूर तक मनुष्य का मस्तिष्क जा सका है, वह सबकुछ आ जाता है, और अगर हम सोचें तो कोई चीज इन दो शब्दों के बाहर नहीं रह गई

है, और जो उसके बाहर है उसे आप छोड़ दें, जो उसके अन्दर है उसको ग्रहण कर लें। मोटे तौर पर अगर विचार करके देखें, तो भारतवर्ष-जैसे देश में, जहां इतने प्रकार के लोग बसते हैं, जहां भिन्न-भिन्न धर्म, भिन्न-भिन्न भाषाएं, भिन्न-भिन्न रीति-रिवाज, भिन्न-भिन्न तौर-तरीके, भिन्न-भिन्न रहन-सहन है, जहां सब बातों में भिन्नता है, यद्यपि यह भी ठीक है कि इस भिन्नता के बावजूद एकसूत्रता है, एकता है तो भी अगर हम सबको एक साथ मिलकर रहना है, तो जबतक हम अहिंसा का आश्रय नहीं लेंगे, आपस में टकराते ही रहेंगे। गांधीजी ने जब अहिंसा का आश्रय लिया तो इसलिए नहीं कि हम अंग्रेजी सरकार के मुकाबले हथियार नहीं उठा सकते थे, हमारे पास उसके लिए साधन नहीं थे, बल्कि इससे भी अधिक इसलिए कि अगर इस देश को एक होकर रहना है, उसमें बसनेवाले सभी लोगों को शांति, सुख और सुलह के साथ रहना है, तो अहिंसा के सिवा दूसरा रास्ता हो ही नहीं सकता। इस चीज को हम न भूलें और इससे हम एक खानदान के अन्दर, एक कुटुम्ब के अन्दर, आपस के झगड़े में कहीं जरूरत पड़े तो काम लें। इसके आगे के दायरे में एक धर्मवालों और दूसरे धर्मवालों के झगड़े में काम लें, सूबे-सूबे का झगड़ा हो तो इससे काम लें, छोटी-छोटी बातों में जहां जरूरत हो इससे काम लें, बड़ी-बड़ी बातों में जहां जरूरत पड़े, इससे काम लें और यह हो सकता है।

तमाम झगड़ा जो होता है उस सबकी जड़ में यह बात रहती है कि एक आदमी जिस चीज को चाहता है उसीको दूसरा भी चाहता है और जब वही चीज दोनों को नहीं मिलती, तो वे आपस में झगड़ते हैं। इस झगड़े को निपटाने का प्रचलित तरीका यह है कि एक-दूसरे से छीन-झपट कर लेते हैं और समझते हैं कि झगड़ा खतम हो गया, मगर वह खतम नहीं होता। दूसरा इसी ताक में रहता है कि उसको मौका मिले तो वह छीन-झपट-कर ले। इस तरह झगड़ा बराबर चलता रहता है। दूसरा तरीका यह हो सकता है कि आदमी अपनी जरूरत को कम करे। जब जरूरत ही नहीं रह जायगी, तो झगड़े की जड़ कट जायगी और हमेशा के लिए झगड़ा टल

जायगा। गांधीजी का जो तरीका था वह आज से नहीं, प्राचीनकाल से रहा है। वह छीन-झपट या झगड़े का तरीका नहीं, बल्कि त्याग—बिल्कुल छोड़ देने—का तरीका है। इसमें अपने स्वार्थ को दूसरे के स्वार्थ में देखना है और दूसरे के स्वार्थ को अपना स्वार्थ समझ लेना है। यही चीज थी जिसे लेकर गांधीजी ने हमें फिर से जगाया। कोई पूछ सकता है कि जितने लोग उनके साथ आये, सब अपना स्वार्थ कैसे छोड़ सकते थे? कुछ-न-कुछ स्वार्थ तो सबमें होता है। बात यह है कि जितने लोग उनके साथ आये, उनमें उन्होंने वह ज्योति जगाई जो मुरझाई हुई दशा में किसी-न-किसी रूप में उनके हृदयों के अन्दर पहले ही थी। अब हमें चाहिए कि जिस काम में लगे हों, जहां भी कुछ करने का मौका हो, हम इस बात को न भूलें कि हमारा काम लेने का नहीं, देने का है। इस देश के अन्दर आज इसी की सबसे ज्यादा जरूरत है। आज जिनके पास कुछ नहीं है, उनकी संख्या बहुत है और जिनके पास है उनकी संख्या कम है। इसलिए अगर लेने की बात होगी तो इतना बड़ा हंगामा हो सकता है कि उसका कुछ ठिकाना नहीं; पर देने की बात हो तो हंगामे के बदले शांति हो सकती है। अगर सभी लोग इस ध्येय को सामने रखकर काम करने लग जायं, तो झगड़े के बदले हमारे यहां सुख और शांति हो सकती है।

दूसरी विचारधारा कुछ दूसरा ही रास्ता बतलाती है। उसमें हमें यह भी चाहिए और जब यह मिले तो वह चाहिए और जब वह भी मिल जाय तो उसके बाद और चाहिए। इस तरह से हमारी जरूरतें बढ़ती जायं, जिनका कोई अन्त नहीं। उसका नतीजा एक ही हो सकता है कि कभी शांति नहीं, हमेशा स्पर्धा, मुकाबला, झगड़ा, कभी हम झपट लें, कभी हमसे दूसरे झपट लें, झगड़ा कभी मिटेगा नहीं, चलता ही रहेगा।

आज इन दो विचारधाराओं का झगड़ा है। हम रोजाना अखबारों में देखते हैं कि लड़ाई का डर सर्वत्र है। इस सबकी जड़ में लेने की बात है, देने की नहीं। देने की बात हो तो झगड़ा

खतम हो जाय। जो हम एक आदमी में देखना चाहते हैं वही संसार में देखना चाहते हैं, जो हम पिंड में देखना चाहते हैं वही ब्रह्मांड में देखना चाहते हैं। आज जो दो विचारधाराओं की टक्कर है, उसका अर्थ यह है कि हम व्यक्ति और समाज को छीन-झपट के मार्ग पर चलायंगे या दूसरों को देने के मार्ग पर चलायंगे। गांधीजी की विचारधारा इस देश की संस्कृति की विचारधारा है, जो दूसरों को देने की रही है। दूसरे देशों की विचार-धाराएं, जिनका हमसे संपर्क कम रहा है, लेने की रही है।

मैं आशा करूंगा कि देश गांधीजी की विचारधारा पर अटल रहेगा और उसको अपनाता रहेगा। जब कभी मुझे मौका होता है तो मैं यही कहता हूं कि गांधीजी का चित्र रखना बहुत अच्छा है; लेकिन उससे भी ज्यादा जरूरी यह है कि हम उनके सिद्धांत को न केवल अपने हृदय के अन्दर चित्रित करें. बल्कि अपने हाथ और पैर उसी रास्ते पर चलायें, जिस पर वह चलाना चाहते थे।

प्रयाग विश्वविद्यालय में गांधीजी के चित्र
का अनावरण करते समय दिया गया भाषण।
१४-११-५२

१३

सत्य और अहिंसा

हम धार्मिक ग्रन्थों में और प्राचीन पुस्तकों में ऋषि, मुनि, फरिश्तों, देवताओं और अवतारों के गुणगान पढ़ते हैं और उनसे अपने जीवन के लिए बहुत-कुछ पाते और सीखते हैं। जो कोई उनके बताये संयमों को और क्रियाओं को जितना अधिक अपने जीवन में उतार सकता है उसका जीवन उतना ही उन्नत और उज्ज्वल होता है। उस तरह की विभूतियां विरले ही संसार में देखी जाती हैं। और इसलिए हमको उनकी लिखी हुई और सुनी हुई बातों पर ही भरोसा करके अपने जीवन को ढालने का प्रयत्न करना पड़ता है, पर यदि किसी ऐसी विभूति से हमारा सम्पर्क हो जाय तो इससे बढ़कर दूसरा सौभाग्य मनुष्य के लिए नहीं हो सकता। महात्मा गांधी ऐसी ही विभूतियों में से थे, जिनके दर्शनों का और जिनके साथ सदेह सम्पर्क का भारतवर्ष के करोड़ों आदमियों को सौभाग्य प्राप्त हुआ था। पिछले तीस-बत्तीस वर्षों में उन्होंने हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक, और कोहाट से लेकर कामरूपा तक, कई बार भ्रमण किया और असंख्य लोगों को अपने दर्शनों का लाभ पहुंचाया। उनकी यात्राएं उद्देश्य-पूर्ति के लिए ही हुआ करती थीं—केवल मन-बहलाव या देश देखने के लिए नहीं। वह उद्देश्य था इस पराजित, पराधीन देश को जगाने का, यहां के मृतक शरीर में प्राण फूंकने का, हमारे हृदयों में नया उत्साह, नये हौसले जगाने का, और हमारे चरित्र को पुष्ट, दृढ़ और बलवान बनाने का। उन्होंने हमको जगाया और निर्भीक बनाया। अपनी शक्ति को पहचानना सिखाया।

दक्षिण अफरीका में उन्होंने भारतीय प्रवासियों के दुखों और अपमानों को दूर करने के लिए अपने सत्याग्रह के अमोघ शस्त्र का आविष्कार किया था। भारत की दुर्दशा, पराधीनता और अकर्मण्यता को दूर करने के लिए उन्होंने इसी शस्त्र का प्रयोग बहुत बड़े पैमाने पर लोगों को सिखाया। सत्याग्रह का अर्थ है सत्य के प्रति आग्रह करना, अर्थात् सत्य का मन से, वाचा से और कर्म से पालन करना। यदि कोई मनुष्य उसे स्वयं पालन करने के प्रयत्न में दूसरे को दबाकर, डराकर या बलात्कार करके उसके सत्य-पालन में बाधक होता है, तो यह सत्य का पालन नहीं कहा जा सकता है। सत्य के पालन का अर्थ सत्याचरण तभी हो सकता है जब एक मनुष्य अपने जीवन में ही न पालकर दूसरे को भी उसके पालन में सहायक हो। इसलिए सत्य के पालन में दूसरे पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डाला जा सकता। अहिंसा का मूल तत्त्व यही है। हम कोई ऐसा काम न करें, जिससे दूसरों को किसी प्रकार का कष्ट पहुंचे। सत्य का पालन इस तरह बिना अहिंसा के असम्भव है। इसलिए महात्माजी ने सत्य और अहिंसा दोनों को अपने जीवन का सिद्धान्त बना लिया और केवल मुंह से ही नहीं, बल्कि अपने सारी जिन्दगी के हरएक काम से इसका पाठ भारतवासियों को और मनुष्य-मात्र को सिखलाते रहे। सत्याचरण अहिंसा के बिना असम्भव है। इसलिए गांधीजी ने दोनों को एक बताया और अहिंसा को सत्य में निहित पाया। ईश्वर सत्य है, और ईश्वर को जानने का केवल एकमात्र रास्ता सत्य का है। वह हमेशा कहा करते थे कि साधन और साध्य में अन्तर नहीं होता है। इसलिए उन्होंने केवल ईश्वर को सत्य ही नहीं बताया, बल्कि सत्य को ही ईश्वर कह दिया।

महापुरुष बड़े-बड़े सिद्धान्तों को बहुत सहज बनाकर जन-साधारण के लिए सुलभ बना देते हैं। महात्माजी ने इस एक चीज को लेकर हमारे सारे जीवन के स्रोत को बदल देने का प्रयत्न किया। सत्य और अहिंसा के पालन के लिए मनुष्य को सब प्रकार की स्वतंत्रता होनी चाहिए। यदि वह किसी प्रकार दबाव और बंधन में है, तो वह इनका पालन नहीं कर सकता।

इन सब बन्धनों से छुटकारा पाना मनुष्य के लिए आवश्यक है और जहां तक वह इनसे छुटकारा पाता है, वहां तक वह सत्य-धर्म का पालन कर सकता है। जो मनुष्य अपनी जरूरतों को बेहद बढ़ाता जाता है, वह अपने ऊपर बंधनों की कड़ियां और भी मजबूत बनाता जाता है। इसलिए सच्ची स्वतन्त्रता के लिए अपनी जरूरतों को कम करना चाहिए। जितना झगड़ा संसार में व्यक्तियों में अथवा जन-समूहों के बीच आजतक हुआ है और होता है, वह इसलिए ही होता है कि एक मनुष्य की जरूरतें दूसरों की जरूरतों से टकराती हैं, इसलिए एक को दूसरे के साथ बलात्कार करना पड़ता है, जिसमें वह अपनी जरूरत को पूरा कर सके—चाहे दूसरा उससे वंचित क्यों न हो जाय। सत्य के पालन के लिए इस प्रकार अपरिग्रह आवश्यक हो जाता है। यदि मनुष्य समझ ले कि हमारी जरूरतें हमारे लिए इतनी ही आवश्यकीय हैं, जितनी दूसरों के लिए, तो वह अपने को भी स्वतंत्र बना सकता है और दूसरों को भी स्वतंत्र छोड़ सकता है। इस तरह जितने हमारे मौलिक धर्म समझे जाते हैं, सबका समावेश विचार करके देखा जाय तो इस सत्य के पालन में ही हो जाता है। क्या एक मनुष्य दूसरे की स्वतंत्रता का अपहरण करके स्वयं स्वतंत्र रह सकता है? नहीं। क्या वह जिसको स्वयं धर्म समझता है, उसे दूसरों पर जबरदस्ती लादकर स्वयं धार्मिक रह सकता है? गांधीजी ने हमको इसी बात को, जिसको सभी धर्मों ने सिखाया है, फिर से क्रियात्मक रूप में बताया।

उन्होंने हमें व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता दिलाने का प्रयत्न किया। हमको सिखाया कि व्यक्तिगत जीवन में और सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन में कोई अन्तर नहीं है। इसलिए जो कुछ व्यक्ति के लिए अहितकर है अथवा निषिद्ध है, वह समाज और राष्ट्र के लिए भी। यदि हम व्यक्तिगत जीवन में और व्यक्तिगत लाभ के लिए असत्य का व्यवहार बुरा मानते हैं, तो समाज और राष्ट्र का भी असत्य द्वारा भला नहीं हो सकता। इसलिए जैसे व्यक्तिगत जीवन में एक बात कहना और आचरण दूसरा करना बुरा माना जाता है, वैसा ही राष्ट्र के लिए भी है।

इसलिए उन्होंने कहा कि सत्य और अहिंसा को छोड़कर यदि हमको स्वराज मिले भी, तो वह हमारे लिए बेकार होगा।

यदि हमारा साधन ठीक नहीं है तो हमारा साध्य भी ठीक नहीं उतरेगा। यह हम अक्सर सुनते हैं कि हमारा उद्देश्य अच्छा है तो उसकी सिद्धि के लिए जो कुछ भी हो, हम कर सकते हैं और यदि उनमें कुछ अनुचित भी करना पड़े तो ध्येय के विचार से यदि वह वांछनीय नहीं तो मार्जनीय जरूर है। गांधीजी ने अनुचित व्यवहार को हमेशा गलत बताया, क्योंकि उससे एक तो कभी सच्ची कार्य-सिद्धि हो नहीं सकती, और दूसरे, कार्य-सिद्धि जैसी कोई चीज़ दीखे भी तो वह उस ध्येय की सिद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि साधन के कारण वह ध्येय ही बदल जाता है।

ऐसे देश में, जहां भिन्न-भिन्न धर्मवाले, भिन्न-भिन्न भाषावाले, भिन्न-भिन्न जातिवाले बसते हैं, प्रत्येक का कर्त्तव्य हो जाता है कि यह एक-दूसरे के साथ ऐसा बर्ताव करे, जिसमें सभी अपनी इच्छा और मर्जी के अनुसार अपने धर्म, भाषा इत्यादि का पालन कर सकें। साम्प्रदायिक झगड़े वैयक्तिक झगड़े के समान ही दबाव डालने के कारण हुआ करते हैं। भिन्न-भिन्न धर्मों के माननेवालों के आपस के इसी प्रकार के व्यवहार पर आग्रह करने से अन्त में गांधीजी को शरीर भी त्यागना पड़ा।

१४

विचारों पर अमल की आवश्यकता

अब समय आ गया है कि महात्माजी के विचारों का पूरी तरह से अध्ययन किया जाय और हम उनकी केवल चर्चा ही न करें, बल्कि उनके अनुसार काम करना भी आरम्भ कर दें। आज जब हम चारों तरफ देखते हैं, तो देश के अन्दर जो-कुछ हो रहा है, उससे कभी-कभी निराशा होती है। जैसा ईसा ने कहा था कि 'तुम जो अपने को मेरा भक्त कहते हो, सुबह मुर्गे के बांग देने के पहले मेरे विचारों को तिलांजलि दे दोगे और उन्हें तिरस्कृत कर दोगे', वही बात कभी-कभी गांधीजी के सम्बन्ध में भी दिल में आती है और ऐसा मालूम होता है कि हम, जो अपने को उनका भक्त कहते हैं, उनकी मृत्यु के पश्चात् एक-एक करके उनकी सब बातों को छोड़ते जा रहे हैं। मालूम नहीं कि हम अपने जीवन में फिर उनको ग्रहण करेंगे या नहीं। ईसा के जितने भक्त थे, उन्होंने जो-कुछ उस वक्त किया सो किया, मगर पीछे चलकर ईसा के विचारों का बहुत तेजी के साथ सारे संसार में प्रचार हुआ। इसलिए यह भी विश्वास होता है कि आज चाहे हम कुछ भी करें, पर अगर महात्मा गांधी के विचारों में सच्चाई है, शक्ति है, तो उनका प्रचार हमारे ऊपर निर्भर नहीं करता। हम उन्हें स्वीकार करें या न करें, वे सदा जीवित रहेंगे और सारे संसार को जीवन प्रदान करते रहेंगे। हम पहले ही बता चुके हैं कि सन् १९३० में नमक-सत्याग्रह के लिए जब गांधीजी डांडी-यात्रा पर निकलनेवाले थे, उनकी गिरफ्तारी की आशंका करके

कुछ लोगों ने यह इच्छा प्रकट की थी कि उनका एक छोटा-सा संदेश रिकार्ड कर लिया जाय और उसे ग्रामोफोन पर घर-घर सुनाया जाय। गांधीजी ने प्रचार के खयाल से संदेश रिकार्ड कराने से साफ इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा—अगर उसमें सच्चाई है तो वह बिना रिकार्ड के अपने-आप फैलेगा। और सचमुच जब महात्माजी डांडी-यात्रा पर निकले, तो चन्द दिनों के बाद देश में अद्‌भुत क्रांति आ गई। उसका फल यह हुआ कि हम आजाद हुए। यद्यपि आज अन्धकार-सा मालूम होता है और तबीयत घबड़ाती है कि क्या सब चीजें गांधीजी के साथ ही चली गईं, क्या हम इस योग्य नहीं हुए कि उन चीजों को कुछ दिन भी कायम रख सकते, मगर वे हमारी अपेक्षा नहीं करतीं। उनमें इतना जीवन है, इतनी शक्ति है कि वे हमको जीवन देंगी और खुद प्रसारित होंगी। यदि संसार को जीवित रहना है तो एक दिन उसे इन चीजों को ग्रहण करना पड़ेगा। वह दिन कब आयगा, मैं नहीं कह सकता। जहांतक हो सकता है, हमें लोगों को उनकी याद दिलाते रहना है। गांधीजी के विचार केवल अध्ययन की चीज नहीं, वे अमल में लाने की चीज हैं। वे केवल दिमागी वर्जिश (मेंटल जिमनास्टिक) नहीं हैं, वे तो प्रत्येक मनुष्य के जीवन में उतारने की चीजें हैं। गांधीजी ने जो संस्थाएं स्थापित कीं, उनके केन्द्र यहां आसपास ही कायम किये। उनके द्वारा जो कुछ सेवा हो रही है, मैं समझता हूं कि वह इस चिराग को कायम रखेगी, जिसमें वह आलोक चारों तरफ फैलता रहेगा। अगर एक भी दिया जलता रहा तो उससे हजारों दिये जलाये जा सकेंगे और आज जो अन्धकार है वह दूर किया जा सकेगा।

गांधी-ज्ञान-मंदिर, वर्धा के शिलान्यास के अवसर पर दिया गया भाषण।
३१-१२-५०

१५

मृत्यु से शिक्षा

महात्मा गांधी का पार्थिव शरीर हमारे साथ अब नहीं रहा। उनके चरण अब स्पर्श करने को हमें नहीं मिलेंगे, उनका वरद-हस्त हमारे कंधों पर अब थपकियां नहीं दे सकेगा, उनकी वाणी अब हमें सुनने को नहीं मिलेगी, उनके नयन अब अपनी दया से हमें सराबोर नहीं कर सकेंगे; पर उन्होंने मरते-मरते भी हमें यह सीख दी कि शरीर नश्वर है, आत्मा अमर है। उनकी आत्मा हमारे सब कर्मों को देख रही है। जो काम उन्होंने अधूरा छोड़ा है, हमें उसको पूरा करना है और यही एकमात्र रास्ता है, जिससे हम उनकी आत्मा, उनकी स्मृति कायम रख सकते हैं। यों तो जो-कुछ उन्होंने किया, वह उनको अमर बनाने के लिए संसार के सामने हमेशा बना रहेगा और किसी दूसरे प्रकार के स्मृति-चिन्ह की आवश्यकता नहीं है। फिर भी मनुष्य अपनी सांत्वना के लिए कुछ-न-कुछ करता है। इसलिए सोचा गया है कि गांधीजी की स्मृति को कायम रखने के लिए जो रचनात्मक काम उन्हें प्रिय थे, उनको बहुत जोरों से चलाया और फैलाया जाय। वह रचनात्मक कार्य के द्वारा अपने सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों को कार्य-रूप में फलता-फूलता देखना चाहते थे। यही मानकर हम भी उनके सिद्धान्तों को सच्चे रूप में संसार के सामने रख सकेंगे, इसलिए उसी कार्यक्रम को चलाना, बढ़ाना, प्रसार करना, उनके सिद्धांतों को कार्यरूप में परिणत करना है।

आज मैं इस बात पर विचार करना चाहता हूं कि गांधीजी की हत्या

क्यों हुई, किस कारण से की गई, अहिंसा के एकमात्र अनन्य पुजारी हिंसा के शिकार क्यों बनाये गये ? भारतवर्ष में इधर कई वर्षों से साम्प्रदायिक झगड़े इतने चलते आ रहे हैं और साम्प्रदायिक भेद-भाव का इतने जोरों से प्रचार किया गया है कि उसी के फलस्वरूप आज यह दुर्घटना हुई । महात्मा गांधी ने अपनी सारी शक्ति साम्प्रदायिक भेद-भाव के विरुद्ध लगा दी थी । वह आदमी, जिसने हिन्दू-धर्म, हिन्दू-समाज और हिन्दुस्तान को अपनी गिरी हुई अवस्था से उठाकर इस शिखर तक पहुंचाया था, उसका अहित स्वप्न में भी नहीं सोचा जा सकता था; पर जो लोग संकुचित विचार के हैं, दूर तक देख नहीं सकते, धर्म को समझ नहीं सकते, उन्होंने ऐसा समझा, और उसीका यह फल हुआ । क्या इस हत्या से हिन्दू-धर्म या हिन्दू-समाज की रक्षा हुई या हो सकती है ? हिन्दू-समाज के इतिहास में लड़ाइयों का उल्लेख है; पर जितने भी युद्ध हुए, वे सब धर्म-युद्ध हुए । धर्म-युद्ध के नियमानुसार किसी को कभी इस तरह की धमकी देकर किसीने नहीं मारा । किसी महात्मा की हत्या का तो कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलेगा । यह पहला अवसर हिन्दू-समाज के इतिहास में है कि किसी हिन्दू पर ऐसे पाप का लांछन लगा है और इसमें संदेह नहीं कि यह ऐसा धब्बा है, जिसको कोई मिटा नहीं सकता । हत्या किसकी की गई ? गांधीजी के शरीर की ? नहीं । गांधीजी का पार्थिव शरीर, वह खुद कहा करते थे, कुछ चीज नहीं है । जो गोली लगी वह गांधीजी के हृदय में नहीं लगी, वह तो हिन्दू-धर्म और हिन्दू-समाज के मर्म-स्थल में लगी । इसलिए आज प्रत्येक भारतवासी का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने नेत्र खोले और देखे कि क्या यह साम्प्रदायिक पाप उसके दिल में भी कोई स्थान रखता है, और यदि रखता हो तो उसे निकाल दे, अपना हृदय साफ कर ले और तभी वह दूसरे के हृदय को समझ सकेगा । हमारा बड़ा भारी दोष है कि हम अपने पापों, बुरे रास्तों और कुभावनाओं को, जिनको हम सबसे अधिक जानते और देखते हैं, न देखने और न समझने की कोशिश करते हैं, और दूसरों के दोषों की खोज में अपनी आंखें और

अपने विचार दौड़ाया करते हैं। आवश्यकता है कि हम अपनी आंखों को अन्तर्मुखी बनाकर देखें, यदि हममें से प्रत्येक मनुष्य अपने को सुधार ले तो सारा संसार सुधर सकता है। गांधीजी ने यही सिखाया है और आज यदि भारत को जीवित रहना है तो उन्हीं के सत्य और अहिंसा के रास्ते पर चलकर। भारत स्वराज्य तक पहुंचा है; पर 'स्वराज्य' अबतक 'सुराज' नहीं हो सका, क्योंकि हम उस रास्ते पर दृढ़ निश्चय के साथ नहीं चल रहे हैं।

कांग्रेसजन, जो गांधीजी के पीछे चलने का दम भरा करते थे, जिसमें बहुतेरों ने बहुत-कुछ त्याग भी किया, आज समझ रखें कि सबकी परीक्षा हो रही है। प्रत्येक के सामने यह प्रश्न है कि क्या सच-मुच वह इस हत्या के कुछ अंश में भागी नहीं है? यदि हममें से हरेक गांधीजी के पथ पर चला होता तो यह दुर्घटना असंभव थी। अपनी कमजोरियों के कारण उनके बताये पथ पर हमारे न चलने का ही यह दुष्परिणाम हमें देखना पड़ा। अब भी स्वराज्य को सुराज बनाने में जो कुछ बाकी है, अगर उसको पूरा करना है, तो हम व्यक्तिगत भेद-भाव छोड़ दें, साम्प्रदायिक भेद-भाव उठा दें और सच्चे त्याग के साथ देश की सेवा में लगें। हमें यह भूल जाना चाहिए कि त्याग का समय चला गया और भोग का समय आ गया। जब हथकड़ियों, जेलखानों, लाठियों और गोलियों के सिवा हमें कुछ दूसरा मिल ही नहीं सका था, तो हम त्याग क्या कर सकते थे? हां, अकर्मण्य बनकर कायरता-पूर्वक हम भाग सकते थे। जब हमारे हाथों में कुछ-न-कुछ अधिकार हों, जब हमको इसका अवसर हो कि हम अपने हाथों को गरमा सकें, अपनी प्रतिष्ठा को संसार की आंखों में बहुत बढ़ा सकें और अपने को एक बड़ा अधिकारी दिखला सकें, फिर भी उस अधिकार की परवा न कर सेवा का ही ख़याल रखें, धन के लोभ में न पड़ें और सादगी में बड़प्पन देखें, तब हम कुछ त्याग दिखला सकते हैं। आज जब हम कुछ सांसारिक वस्तुओं को प्राप्त कर सकते हैं तो उनके त्यागने को ही त्याग कहा जा सकता है।

जब यह प्राप्य नहीं था, उस वक्त त्याग क्या हो सकता ?

गांधीजी की मृत्यु हममें यह भावना एक बार और जागृत कर दे, यही ईश्वर से प्रार्थना है और इसी में देश का कल्याण है।

१६

'अहिंसा परमो धर्मः'

समस्त संसार के लगभग एक सौ शांतिवादियों का सम्मेलन भारत में हो रहा है, और विश्व में शांति-स्थापना की विराट समस्या के संबंध में वे विचार-विनिमय कर रहे हैं। समस्त संसार की जनता के प्रति वे अपनी शुभकामनाएं और सदाशाएं भेज रहे हैं। जो लोग इस सम्मेलन में सम्मिलित हुए हैं, वे चौंतीस देशों से आये हैं; परन्तु वे अपने देशों अथवा सरकारों के प्रतिनिधित्व का दावा नहीं करते, क्योंकि सरकारों का अपनी समस्याओं की ओर देखने और उन्हें हल करने का अपना एक अलग दृष्टिकोण होता है, अपना एक अलग ढंग होता है। इस परिषद् के सदस्य साधारण स्त्री-पुरुषों में से हैं, जो विभिन्न साधनों से जीवन-यापन करते हैं; किन्तु शांति के लिए उत्सुक हैं—वह शांति जो केवल युद्ध की अनुपस्थिति मात्र नहीं है, बल्कि जो काम करती हुई सद्भावना के रूप में विद्यमान है—वह शांति, जिसके लिए उन्होंने अपने-अपने क्षेत्र में काम किया है और जिसके लिए उन्होंने कष्ट सहे हैं। उनकी संसार के साधारण स्त्री-पुरुषों से अपील है कि वे उन कारणों को खोज निकालें, जिनसे युद्ध पैदा होता है और उनका उन्मूलन करें। युद्धों का मूल कारण यह है कि कुछ व्यक्तियों और राष्ट्रों की इच्छाएं और महत्त्वाकांक्षाएं दूसरे व्यक्तियों और राष्ट्रों की इसी प्रकार की इच्छाओं और महत्त्वाकांक्षाओं से टकराती हैं। अमर और सफल शान्ति उसी दशा में सुनिश्चित हो सकती है जबकि राष्ट्र का निर्माण करने-वाले व्यक्ति और राष्ट्र अपनी इन महत्त्वाकांक्षाओं को अपने-आप सीमित

और संयमित कर लें। आधुनिक मनुष्य की प्रकृति पर विजय की प्रवृत्ति केवल उन कामनाओं को अधिक तेज करने की है—अग्नि पर तेल डालने की है। विश्व ने एक पीढ़ी में ही दो विध्वंसकारी युद्धों को देखा। प्रत्येक युद्ध युद्धों को हमेशा के लिए बन्द करने के उद्देश्य से लड़ा गया; पर प्रत्येक युद्ध केवल द्वेष और भावी युद्ध के बीजों की विरासत छोड़ने में ही सफल हुआ। महात्मा गांधी ने देख लिया कि जैसे कीचड़-को-कीचड़ से धोने का प्रयास व्यर्थ होता है, वैसे ही युद्ध-को-युद्ध द्वारा, अधिक विध्वंसकारी शस्त्रास्त्रों के निर्माण द्वारा, जन-समूहों का युद्ध के लिए अधिक सुसंगठन द्वारा, समाप्त करने का प्रयास भी व्यर्थ है। उन्होंने युद्ध के कारणों की जड़ पर आघात करने का यत्न किया। मनुष्य को शांति का साधन बनाने का प्रयास किया। मनुष्य जीवन में सादगी लाकर, इच्छाओं पर संयम और अपने चारों ओर प्रेम और विश्वास का प्रसार करके तथा स्वयं निर्भय रहते हुए दूसरों को अपनी ओर से अभयदान देकर ऐसा साधन बन सकता है। इस प्रकार के व्यक्तियों को तैयार करने के लिए हमें अपने सारे जीवन को नये ढांचे में ढालना होगा। मानव शांति-स्थापना में तबतक सफल नहीं हो सकता जबतक उसका जीवन ऐसा बना रहे कि उससे युद्ध के कारण पैदा होते रहें। वातावरण निस्संदेह व्यक्ति को प्रभावित करता है; किंतु व्यक्ति वातावरण को परिवर्त्तित कर सकता है और वस्तुतः वह उसका निर्माण भी कर सकता है बशर्ते कि वह दुरूह पर सीधे पथ पर चलने का संकल्प कर ले। यह पथ वही है जिसको चिरकाल से सभी धर्मों के पैगम्बरों और महात्माओं ने बताया है। यह वही मार्ग है, जिसको हिन्दू ऋषियों ने 'अहिंसा परमो धर्मः' के आदेश द्वारा, ईसामसीह ने 'गिरि-प्रवचन' द्वारा और कुरान ने सीधे रास्ते पर चलने के आदेश द्वारा बताया है। मनुष्य को इस शिक्षा को केवल दोहराना ही नहीं है, बल्कि इसके अनुसार अपने दैनिक जीवन को ढालना है। यह तभी संभव हो सकता है जब मनुष्य अपने लिए सादगी ग्रहण करे और दूसरों के प्रति सक्रिय सद्भावना। सादगी का अर्थ ही अधिक-से-अधिक स्वावलम्बन और कम-से-कम परावलम्बन है। सक्रिय सद्भावना

दूसरों की सेवा में अपने आप प्रदर्शित हो सकती है। व्यक्ति राष्ट्र का निर्माण करते हैं और अपने साथियों और सहयोगियों के कोरे शब्दों की अपेक्षा अपने जीवन द्वारा अधिक प्रभावित कर सकते हैं। वे अपने देश की सरकार को भी युद्ध-मार्ग छोड़कर शांति-मार्ग की ओर प्रवृत्त होने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। किन्तु ऐसा करने के लिए उनको अपना जीवन पवित्र बनाना पड़ेगा और अपनी आवश्यकताओं को सरल। जब हम अपनी आवश्यकताओं को सरल बनाने की बात करते हैं तो उसका यह अर्थ नहीं कि जीवन की स्वाभाविक और साधारण आवश्यकताओं को कम कर दिया जाय। इसका अर्थ केवल यह है कि व्यक्ति अपने-आपको उन भौतिक आवश्यकताओं का दास न बना डाले, बल्कि उनपर काबू पा ले और उनके निरोध की शक्ति प्राप्त कर ले।

जब हम विश्व-शांति की बात सोचते हैं, हम यह सत्य नहीं भुला सकते कि जहां एक ओर मानवता के एक वर्ग का दूसरे वर्ग द्वारा किया जानेवाला शोषण शोषक-वर्ग की उस गुलामी का प्रत्यक्ष फल है, जिसका वह वर्ग अपनी उत्तरोत्तर ऊंचा उठते रहनेवाले जीवन-स्तर की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को संतुष्ट करने की लिप्सा के कारण शिकार बन जाता है, वहां दूसरी ओर यही शोषण व्यक्तियों और राष्ट्रों के परस्पर संघर्ष का प्रत्यक्ष कारण भी होता है। अतएव सब प्रकार का शोषण सर्वत्र बन्द होना चाहिए, चाहे वह सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक ही क्यों न हो, और चाहे वह एशिया में होता हो अथवा अफरीका में, यूरोप में अथवा अमरीका में। मनुष्य को अपनी अन्तरात्मा में ही आनन्द की प्राप्ति करनेवाली और दूसरों का शोषण किये बिना ही अपना काम चलाने की योग्यता प्राप्त करानेवाली शिक्षा शांति-स्थापना की आवश्यक प्रणाली है—वह शिक्षा, जो सादगी और स्वावलम्बन की कला सिखाती है। आज जीवनोपयोगी समस्त वस्तुओं और साधनों की पूर्ति करके पूर्णतया आरामदेह और संतुष्ट जीवन बिताने की क्षमता और ज्ञान मनुष्य को उपलब्ध है; किन्तु उन साधनों का उत्तरोत्तर उपयोग विनाश-

कारी उद्देश्यों के लिए किया जा रहा है। उन्हें रचनात्मक कार्यों में लगाया जा सकता है। यह तभी हो सकता है जब मानवता का प्रत्येक वर्ग यह अनुभव करने लगे कि स्वयं उनकी अपनी सुविधाओं और सुखों में भी वृद्धि हो जायगी। यदि वह जान लें कि भोग की अपेक्षा त्याग में अधिक आनन्द है, यदि वह घृणा और द्वेष की भावना को प्रेम में, भय को विश्वास में, अधिकार को कर्त्तव्य में और शोषण को सेवा में परिणत कर सकें।

अतः विश्व के शांतिवादियों की इस परिषद् की संसार के समस्त साधारण स्त्री-पुरुषों से अपील और प्रार्थना है कि वे अपने वैयक्तिक जीवन को इस प्रकार का रूप दे दें, इस प्रकार के ढांचे में ढाल लें कि उनका जीवन शांतिमय हो जाय। समस्त राष्ट्रों से इस परिषद् की अपील है कि उनके पास जो सामग्री और आदर्शों के साधन हैं, उनका उपयोग वे मनुष्य-मात्र को विध्वंस का अस्त्र बनाने और अधिक-से-अधिक प्रभावशाली विनाशकारी शस्त्रों एवं साधनों से उसे सुसज्जित करने की अपेक्षा, रचनात्मक और शांतिदायी कार्यों में करें। यही है महात्मा गांधी का शांति-संदेश। उन गांधीजी का, जो कलतक इस धरती पर चलते-फिरते थे, और जो अपने जीवन और श्रद्धा मे असंख्य नर-नारियों को प्रभावित किया करते थे। यह संदेश सेवाग्राम की उस कुटिया से भेजा जा रहा है, जहां उन्होंने अपने जीवन के कई वर्ष बिताये और यह उस दिन भेजा जा रहा है, जो शांति के अवतार ईसामसीह के अवतार का शुभ और पवित्र दिन है।

सेवाग्राम,

२५-१२-५०

१७

हमारी जिम्मेदारी

दो-तीन प्रकार के काम हमें अभी करने हैं और इन कामों के लिए जो साधन हमें उपयोग में लाने हैं, वे काम के विचार से भिन्न-भिन्न भी हो सकते हैं। एक चीज तो यह विचारणीय है कि हम जन-साधारण में पूज्य बापू की विचारधारा का प्रचार किस तरह से करें और लोगों को कैसे प्रभावित करें? हमारा यह काम तबतक पूरा न होगा जबतक उस तरह का समाज, जैसाकि महात्मा गांधी स्थापित करना चाहते थे, हम स्थापित न कर लें। हमारे देश में ही नहीं, विदेशों में भी हमें वैसा ही समाज कायम कराना है। यह काम बहुत कठिन है और गांधीजी ने अपने देश के लिए कुछ रास्ता खोला था; पर संसार के सामने इसका कोई रूप प्रकाशित नहीं किया था। वह हमेशा सोचते थे और उनका खयाल था कि जब हम अपने देश में इन बातों को पूरा करने में सफल हो जायंगे, तभी दूसरों को बता सकेंगे, और तभी हम उनसे इस तरह की आशा रख सकेंगे कि वे हमारा अनुकरण करें। कहीं विदेश में जाना नहीं चाहते थे; क्योंकि वह कहते थे कि हमारा संदेश बाहर के लोग तभी सुनेंगे, जब देख लेंगे कि हमारे देश के लोगों ने इसपर चलकर कुछ काम कर लिया है। यदि वैसा समाज हम स्थापित करना चाहते हैं, तो पहले हम इस विचारधारा को देश के ज्यादा-से-ज्यादा लोगों तक पहुंचावें। इसलिए हमें एक ऐसा समाज स्थापित करना है, जिसमें सब लोग शरीक हो सकें और उससे परिचित हो जायं। हम यह भी चाहते हैं कि इस तरह प्रति वर्ष

सम्मेलन किये जायं और हम परस्पर मिलकर एक-दूसरे के विचारों को समझें, क्योंकि ऐसे लोग अधिक हैं और वे सारे देश में फैले हुए हैं जो इस विचारधारा से परिचित हैं। इनमें से कुछ उनके अनुसार अपने जीवन को ढालने की कोशिश भी कर रहे हैं। वे सब चाहते हैं कि हम इकट्ठे हों, एक-दूसरे से मिलें, नई-नई प्रेरणाएं लें, उत्साह बढ़ायें।

हमें यह भी देखना है कि जो संस्थाएं आजतक महात्मा गांधी की प्रेरणा से इस देश के अन्दर स्थान-स्थान पर कायम हुई हैं, जिन्हें उन्होंने केन्द्रीय संस्थाओं के रूप में सेवाग्राम में स्थापित किया, उन्हें आगे किस तरह बढ़ाया जाय।

यह एक तीसरा काम हमारे सामने है।

सबसे बड़ी बात यह है कि हमारे देश के अन्दर आज हमको यह देखना है कि जो सिद्धान्त, जो मौलिक तत्त्व, जो बातें गांधीजी बता गये, उनको आज हम आपस के बर्ताव में, एक-दूसरे के साथ, राजनैतिक क्षेत्र में, समाज में या दूसरी अवस्थाओं में, कहांतक काम में ला रहे हैं। यह दुःख की बात है और हमें मानना पड़ेगा कि आज ही नहीं, गांधीजी के जीवनकाल में ही कुछ ऐसे चिह्न देखने में आये, जिनसे मालूम हुआ कि हम केवल उनकी शिक्षा को ही नहीं, एक-दूसरे के साथ साधारण बर्ताव, मनुष्योचित रवैये को भी, जो समाज में चलता है, भूल गये हैं। उस वक्त महात्माजी जीवित थे और जब उन्होंने हमको इतने जोरों से पिछड़ते और गिरते देखा, तो उन्होंने अपनी जान की बाजी लगाकर हमें बचाना और गिरने से रोकना चाहा। इसी बीच उनके प्राण गये। उनके प्रयत्न का इतना फल हुआ कि हम जो बड़ी तेजी से गिर रहे थे, वह गिरना रुक गया और बहुत-कुछ परिवर्त्तन आ गया; पर कई चीजों में देश के अन्दर जैसी जागृति उन्होंने पैदा की, और जिस तरह से उसे ऊपर उठाया, आज उस स्थान पर हम नहीं हैं। बहुत-सी बातों में हम नीचे उतर आये हैं। हमारा आज का कर्त्तव्य हो गया है कि हमें जो उन्होंने सिखाया और बताया, उसे किस प्रकार एक मर्तबा ग्रहण कर सकते हैं,

इसपर मनन करें।

सभी जानते हैं कि महात्माजी ने सारे देश को नैतिक तरीके से बहुत ऊंचा उठाया था। जिस समय वह इस देश में दक्षिण अफरीका से लौटकर आये और राजनैतिक क्षेत्र में उन्होंने काम आरम्भ किया, उस समय जो हमारे आचार-विचार थे, राजनीति को जिस तरह से हम देखते थे, उसमें उन्होंने काफी अन्तर कर दिया, और जो बड़ी चीजें उन्होंने दिखाईं वे यह थीं कि हमारे व्यक्तिगत जीवन में, जीवन के हर पहलू में, चाहे वह सामाजिक हो या राजनैतिक, सचाई को ही आधार मानकर हमें काम करना चाहिए। उद्देश्य चाहे जितना बड़ा हो, पर उसके साधन अगर गलत हों, तो फिर उद्देश्य की सिद्धि ठीक नहीं होगी और इसलिए सत्य और अहिंसा का रास्ता ही एक रास्ता है, जो उद्देश्य की सिद्धि में सहायक हो सकता है।

ब्रिटिश के साथ हम जबतक लड़े, कुछ हदतक इस रास्तेपर चले, बहुत दूर तो नहीं गये, पर हमारा रुख उस तरफ था। हम इस चीज को मानते थे, चलन में गाफिल हो जाते थे, पर रुख ठीक उस तरफ था। मगर आज रुख बिल्कुल उल्टी ओर नहीं है तो कुछ मुड़ जरूर गया है। नतीजा यह है कि चारों ओर से आवाजें सुनने में आती हैं कि देश में चोरबाजारी चल रही है, रिश्वतखोरी चल रही है, धांधली चल रही है। हम एक-दूसरे को दोषी ठहराते हैं। जो गवर्मेंट के बाहर हैं, वे सरकार को दोषी ठहराते हैं, जो सरकार में हैं, वे बाहरवालों को दोषी ठहराते हैं।

'सर्वोदय-समाज' के लिए एक बड़ा प्रश्न यह है कि क्या वह कुछ ऐसा कर सकता है, जो मुड़ते हुए रुख को सीधे रास्ते पर लगा दे? यह एक बड़ा प्रश्न भारत के सामने है। चूंकि महात्माजी के बताये हुए रास्ते पर चलने का हमारा प्रयत्न रहता है, इसलिए हमारे ऊपर यह खास जिम्मेदारी आ जाती है कि अपने को तो इस रास्ते पर चलाना ही है; पर देश को भी इस रास्ते पर लाने का प्रयत्न करें। दूसरे के दोष तो हर कोई निकाल लेता है पर अपना काम तो यह है कि अपने दोष को अधिक देखें, और इसपर से

किन हो, तो कोई नया रास्ता निकालें, जिससे जो बुराई देखने में है, वह दूर कर सकें।

आज पश्चिम से कुछ वाद आ रहे हैं, जिनका मानना है कि जो वे ठीक समझते हैं, वह दूसरों पर लाद दें और उन बातों को दूसरों से करवायें, चाहे उन बातों को दूसरे मानें अथवा न मानें, और समाज का संगठन ऐसा कर दिया जाय कि समाज का हर व्यक्ति उनके बताये हुए मार्ग पर चलने के लिए मजबूर हो जाय। महात्मा गांधी हमेशा यह सिखाते रहे और समझाते रहे कि व्यक्ति यदि अपने को ठीक कर ले, सुधार ले, तो समाज भी सुधर सकता है। हिंसा और अहिंसा की बात इसमें आ जाती है। जबरदस्ती किसी बात को दूसरे पर लादना हिंसा, और स्वेच्छा से मानी जाय वह अहिंसा होती है। हमको आज यह सोचना है कि जो अहिंसात्मक समाज महात्माजी इस देश में स्थापित करना चाहते थे, उसके लिए हमारे पास क्या साधन हैं ? वह है समाज के अन्दर के व्यक्तियों को सुधारना और जब प्रत्येक व्यक्ति सुधर जायगा तो समाज अपने-आप ही सुधर जायगा। इस बात को वह इतने व्यापक रूप से तो नहीं फैला सके, जितना कि चाहते थे, मगर उसपर चलने का मार्ग अवश्य बता गये और अब उस अधूरी बात को हमें पूरा करना है। यह अभिमान की बात नहीं है, क्योंकि दूसरों पर हमें कुछ लादना नहीं है, पर अपनी दशा को सुधारना है। जब हम इस योग्य हों कि दूसरे को सुधार सकें, तो हो सकता है कि दूसरे भी हमारी बातों से प्रभावित हों। ऐसा हुआ तो यह ऐसी चीज बनेगी, जो हमेशा कायम रहेगी।

'सर्वोदय-समाज' का यह काम है कि जो उसके सिद्धांत पर चलने-वाला है, अपना जीवन ऐसा बनाये कि जो समाज हम स्थापित करना चाहते हैं, वह हर मनुष्य अपने इर्द-गिर्द बना ले। इस तरह सारे देश में एक बड़ा समाज पैदा हो जायगा। कार्यक्रम महात्माजी ने दे दिया है। इसके द्वारा हमें लोगों को तैयार करना चाहिए। हम समझकर देखें और ध्यान-पूर्वक काम करें, तो हम बहुत हदतक आगे बढ़ेंगे।

पिछले वर्ष जब यह सम्मेलन हुआ था, तो उसमें इसकी चर्चा की गई थी कि जो प्रवृत्तियां चल रही हैं, उनका एकीकरण किया जाय और 'सर्व-सेवा-संघ' बने। उसका नतीजा यह होगा कि सब संस्थाएं दृढ़ता से अपना-अपना काम कर सकेंगी। हमारा फर्ज है कि संस्थाओं को मजबूत बनायें और ऐसे सिद्धांतों पर चलें कि जिनसे समाज और देश को पूरी-पूरी सेवा मिल सके। हमें सोचना चाहिए कि यदि हर व्यक्ति अलग-अलग डफली लेकर बजाने लगे तो उससे कोई राग नहीं, बल्कि शोर-गुल निकलेगा। इसी तरह अगर संस्थाएं अलग-अलग काम करने लगीं, मिलकर न चलें, तो नतीजा अच्छा न होगा। सब तार एक तरह से बजें कि एक मधुर संगीत सुनाई दे। सभी संस्थाएं मिलकर एक सुन्दर गीत गायें। अलग-अलग शोर-गुल न मचायें। इन दोनों चीजों पर विचार करके आप निश्चय कर लें कि आगे हमें किस तरह से काम करना चाहिए।

अपने देश में ही नहीं, बल्कि विदेश के लोगों में भी काफी दिलचस्पी पैदा करनी होगी। महात्माजी जो कुछ कह गये हैं, लिख गये हैं, वह सारे संसार के लिए है। उसका प्रचार भी बाहर बहुत-कुछ हो सकता है। विदेशी लोग यह जानने के लिए उत्सुक हैं कि भारत के लोग क्या कर रहे हैं। वहां की परिस्थिति कुछ ऐसी है कि वहां के लोग अधिक उत्सुक हो गये हैं। अभी तीस वर्ष के अन्दर उन्हें दो बड़ी लड़ाइयां देखनी पड़ीं, जिनमें हत्याएं हुईं। उसके अलावा मनुष्य का चारित्रिक पतन देखा गया और लड़ाई के बाद भी शान्ति के चिन्ह नहीं दिखाई पड़े, बल्कि अब फिर तीसरी लड़ाई की तैयारी देख रहे हैं।

इस देश में सत्य और अहिंसा की बातों पर महात्माजी ने इतना जोर दिया, नैतिकता को इतना ऊंचा उठाया कि इसे स्वराज्य मिला। विदेश के लोग हमारी ओर आशा लगाये हुए हैं और देख रहे हैं कि शायद उन्हें इस देश से कोई ऐसी बात मिल जाय कि उनकी भविष्य की विपत्ति हट सके। क्या हम अपने को इतना योग्य बना सके हैं कि गांधीजी के समान हम उन्हें कोई संदेश दे सकें? जैसी परिस्थिति आती है, साधन निकालने पड़ते हैं।

विदेशी लोग हमारी ओर आशाभरी दृष्टि से देख रहे हैं कि उनके लिए हम कोई हल निकाल सकें। हम अपने को इस योग्य तभी बना सकेंगे जब इस देश में कुछ ऐसा कार्य कर लें कि दूसरे देशों के लोगों पर हमारी नैतिकता का असर पड़ सके। स्थिति तो वास्तव में ऐसी है। गांधीजी ने जो रास्ता हमें बताया था, हम उससे उल्टे चल रहे हैं। हमें सोचना है कि ये दिक्कतें जो हमारे सामने हैं, उनका क्या हल है। गवर्मेंट और गैर-सरकारी संस्थाओं में बड़ा अन्तर है। हमारे ऊपर जिम्मेदारी सिर्फ सलाह देने की है। हम किसी कार्य को स्वतन्त्र रूप से चला नहीं सकते। सरकार हमारी जरूर है। यह हो सकता है कि जो यहां हैं, वे वहां चले जायं, जो वहां हैं, वे यहां चले आयें। गवर्मेंट में हमारे ही लोग हैं। इसलिए हमें इस चीज को किसी दूसरी दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। हम उनकी शिकायत नहीं कर रहे हैं या दोष निकालने की दृष्टि से कुछ नहीं कहना चाहते हैं, बल्कि उद्देश्य सिद्धि के लिए कह रहे हैं या कर रहे हैं। दोनों का उद्देश्य एक है। दोनों एक ही ओर जाना चाहते हैं और दोनों ही के पास जो साधन हैं, उन्हीं से काम करना चाहते हैं। यदि इसी तरह हम काम कर लें, तो गवर्मेंट और हमारे बीच मतभेद की कोई बात नहीं है। यदि गवर्मेंट से कोई गलती होती है तो उसको ठीक रास्ते पर लाने का यही तरीका है और उसी तरह यदि हमसे कोई गलती होती है, तो हमारा रास्ता भी सुधारा जा सकता है। इसलिए मैं चाहता हूं कि देश की जो परिस्थिति है, उसपर हम गंभीरतापूर्वक सोचें और उसमें जो बुराइयां आ गई हैं, उन्हें दूर करने में क्या कर सकते हैं, इसपर विचार करें और निश्चय करके उसके अनुसार अपना कार्य शुरू कर दें। हम इस बात को छोड़ दें कि गवर्मेंट क्या करती है और क्या नहीं करती, क्योंकि यदि हम अपने को दुरुस्त कर लेंगे तो उसका असर उसपर भी होगा।

'सर्वोदय समाज' के राऊ-सम्मेलन में
दिया गया भाषण।

९-३-४९

१८

गांधीजी की देन

गांधीजी और उनकी शिक्षाएं, उनका दर्शन और उनका जीवन, बहुमुखी रहे हैं और हम, जिन्हें उनके संपर्क का सौभाग्य मिला है, वे उनकी सभी शिक्षाओं को पूर्णतया सामूहिक रूप से समझने में सदैव सफल नहीं हो सके ।

हम सबने उनके विभिन्न विषयों जैसे उनकी सीख, उनके विचार और उनके व्यावहारिक जीवन को अपनी-अपनी दृष्टि से अपनाया । इस तरह उनकी सभी चीजों को हम व्यापक रूप में समझ नहीं पाये और अपने-अपने विचार के अनुसार किसी एक काम में संलग्न हो गये । गांधीजी में अपने विविध प्रकार के कामों के लिए ठीक आदमी चुन लेने की अद्‌भुत शक्ति थी, और जिसकी जैसी बुद्धि थी, जैसी शिक्षा थी, जैसा रहन-सहन था, और जैसी योग्यता थी, उसके अनुसार उसे काम दे दिया । उनके विचारों की पृष्ठभूमि और उनकी शिक्षा में जो सिद्धांत निहित थे, उनको मानते हुए भी हम लोगों ने कभी-कभी अपनी दृष्टि को संकुचित बना लिया है और किसी एक बात पर आवश्यकता से अधिक जोर दे दिया है और दूसरी बातों को नजरंदाज कर दिया है । इसके लिए हम किसी को दोष नहीं देते हैं, क्योंकि यह संकुचितता किसी विशेष विषय के साथ गहरा सम्बन्ध और तत्संबंधी अपने गहरे विश्वास के कारण हुई । हमने महसूस किया कि लगन और विकास की कमी कभी-कभी लाभदायक हो सकती है, और अपनी

इस कमी के कारण हम सब बातों पर व्यापक दृष्टि डाल सके जिससे किसी एक विषय पर अनावश्यक जोर न पड़े और जो-कुछ गांधीजी के सिद्धांत थे और जो-कुछ वह चाहते थे, सब बातों पर समान ध्यान पड़ सके।

आप मेरे इस अभिप्राय को तब समझेंगे, जब मैं उनके द्वारा स्थापित कई संस्थाओं का, जो उनके किसी एक विचार को लेकर चल रही थीं, जिक्र करूंगा। उन्होंने चरखा संघ, ग्रामोद्योग संघ, गो-सेवा-संघ, इत्यादि स्थापित किये और इण्डियन नेशनल कांग्रेस का, जिसका अस्तित्व बहुत दिनों से था, उन्होंने पुनस्संगठन किया। उसमें नवजीवन और नई स्फूर्ति भरी और उसका उन्होंने इतना विस्तार बढ़ा दिया कि उसका सारा रूप बदल गया। ये सब संस्थाएं, उनके विभिन्न विचारों को लेकर चलती रहीं और एक गांधीजी उन्हें एकसूत्र में बांधे रखने का साधन या कड़ी थे। वह उस तरह के विचारक या दार्शनिक नहीं थे, जैसे अन्य दार्शनिक या विचारक अपना सिद्धांत लिखकर दूसरे के अध्ययन और आचरण के लिए छोड़ जाते हैं। उनके कुछ मौलिक सिद्धांत थे, जिनपर वे अपने जीवन भर दृढ़ रहे और अन्य बातों के सम्बन्ध में जो काम उनके सामने आया, उसको उन्होंने हाथ में लिया, जो प्रश्न उनके सामने आये, उनका उन्होंने हल निकाला और एक पाठ्य-पुस्तक में सिलसिलेवार जीवन और समाजसंबंधी अपनी सारी धारणाओं को न लिखकर उन्होंने एक-एक प्रश्न का अलग-अलग निबटारा किया और इस तरह से मनुष्य के सारे जीवन पर, विशेषकर इस देश पर वह छा गये।

भारतीय जीवन का ऐसा कोई भाग नहीं है, जो महात्माजी से अछूता रह गया हो, जिसपर उनके जीवन का असर न पड़ा हो और जिसके लिए उन्होंने अपनी कुछ देन न दी हो। उन्होंने समाज का एक पूरा चित्र बना लिया, जो निरे पुस्तकीय ज्ञान से नहीं निकला था, जो निरे मानसिक श्रम की उपज नहीं थी, बल्कि जीवन के प्रतिदिन के अनुभव, समस्याओं और उनके हल, को ध्यान में रखकर तैयार किया गया था और जिसे वह दूसरों को अच्छी तरह से दिखा सकते थे और

कबूल करा सकते थे ।

मेरी एक कठिनाई है, जो एक प्रकार से निजी है । वह यह कि इस कान्फ्रेंस में बोलना मेरे लिए कुछ असंगत मालूम होता है । गांधीजी का नाम अहिंसा के साथ जुड़ा हुआ था, युद्ध में उनका विश्वास नहीं था। पर मैं उस देश का प्रधान हूं, जिसने लड़ाई का त्याग नहीं किया है, जिसने हिंसा को बिल्कुल छोड़ नहीं दिया है, और न सेना को रखना छोड़ा है । इतना ही नहीं, हमने गांधीजी के आर्थिक कार्यक्रम पर भी पूरा-का-पूरा अमल नहीं किया है। तब फिर ऐसे देश के प्रधान की हैसियत से मुझको क्या अधिकार है कि आपके सामने उनके सिद्धांतों के संबंध में बोलने का साहस करूं, जबकि आप महानुभाव दूर-दूर देशों से यह जानने आये हैं कि गांधीजी क्या करते थे और क्या करना चाहते थे । लेकिन फिर भी मैं कहूंगा कि आपका ध्यान इस बात पर जायगा कि गांधीजी अपने काम में कहां तक पहुंचे थे तो उससे भी आपको प्रेरणा मिलेगी । गांधीजी क्या करना चाहते थे, जो नहीं कर सके और हम लोगों के लिए किस प्रयोग को अधूरा छोड़ गये ? उससे भी आपको कुछ सीखने को मिलेगा । इसके अलावा जो कुछ वह बता गये, उसे पूरा करने का हमने जो कुछ प्रयत्न किया, उससे, और कदाचित उससे भी अधिक हमारी असफलताओं से आप कुछ सीख सकेंगे । हमने सोचा कि हम इन चीजों की ओर ध्यान आकर्षित कर सकते हैं और उससे कुछ लाभ उठा सकते हैं ।

गांधीजी ने अपने सामने समाज के लिए एक रूपरेखा बना रखी थी । वह समझते थे कि तबतक अहिंसा स्थापित नहीं हो सकती और हिंसा एकबारगी छोड़ी नहीं जा सकती जबतक कि वे कारण, जिनसे हिंसा पैदा होती है, और जो अहिंसा का प्रयोग कठिन बना देते हैं, दूर न कर दिये जायं । हम लोग जानते हैं कि ऐसा क्यों होता है और आपसी झगड़े का कारण क्या होता है । एक आदमी की इच्छा या चाह दूसरे की इच्छा या चाह से टकराती है और यह इच्छा किसी भौतिक अथवा बाह्य पदार्थ के लिए होती है । जब एक चीज को दो आदमी चाहने

लगते हैं और वह चीज दोनों को एकसाथ नहीं मिल पाती, तो वही हिंसा का कारण बन जाती है। यद्यपि सुनने में यह कुछ विरोधाभास मालूम होता है, पर यह सच है कि गांधीजी एक तरफ लोगों की गरीबी दूर करना अपना एक मौलिक कार्यक्रम समझते थे और दूसरी ओर जहांतक हम समझे हैं, वह कभी बाह्य पदार्थों द्वारा जीवन-स्तर को असीमित और अनिश्चित हदतक उठाने के पक्षपाती नहीं थे। यद्यपि वह चाहते थे कि जीवन की सभी जरूरी चीजें हमें उपलब्ध हों, ताकि उनके बगैर हमारा जीवन दुखी न हो जाय, तथापि वह यह भी चाहते थे कि कोई व्यक्ति किसी तरह से अपनी जरूरत से ज्यादा का संग्रह न करे और न इसकी चाह उसे रहे। अनिवार्य आवश्यकताओं को भी व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार निर्धारित न करे; बल्कि उसके निर्धारण में और कई विचार भी हो सकते हैं। एक तो यह कि मनुष्य यह समझे कि जो मेरे लिए जरूरी है वह दूसरों के लिए भी जरूरी हो सकता है, और इसलिए वह सबमें बांट दिया जाय। जबतक इस प्रकार का बंटवारा संभव न हो जाय, तबतक उसको समझना चाहिए कि उसको उस चीज को अपने लिए भी जरूरी समझने का अधिकार नहीं है। इसीलिए महात्माजी मनुष्य की जरूरतों पर आवश्यक नियंत्रण रखने पर जोर देते थे। ऐसा समाज हिंसा से बच नहीं सकता जो अपनी जरूरतों पर नियंत्रण न रखकर उनको बढ़ाता जाता है। महात्माजी कहते थे कि अहिंसक समाज के निर्माण के पहले मनुष्य को उस जगह पर आ जाना चाहिए, जहां वह अपनी मांगों को सीमित रख सके। इस प्रकार की सीमा किसी व्यक्ति के लिए नहीं, बल्कि उसी ढंग से समाज के लिए होनी चाहिए। वह इस तरह के समाज का निर्माण करना चाहते थे, जिसका मुख्य उद्देश्य जरूरतों को बढ़ाना और उनको जल्द-से-जल्द पूरा करना न हो—बल्कि सबके लिए आवश्यक वस्तुओं को मुहैया करना और ऐसी परिस्थिति न पैदा होने देना हो, जिसमें वस्तुओं के लिए होड़ हो। आपस के वैमनस्य को जब हम देखने लगें तो उससे पहले हमें सोच लेना चाहिए कि यह

वैमनस्य किन चीजों से शुरू होता है ? मैंने एक वजह बता दी है। और भी बहुत-सी चीजें हैं, जिनके कारण हम आपस में लड़ते हैं। वैमनस्य मतभेद के कारण हो सकता है। वे मतभेद चाहे धर्म से संबंध रखते हों, समाज-संबंधी आदर्शों से संबंध रखते हों अथवा व्यक्ति के स्वत्त्वों और कर्त्तव्यों से संबंध रखते हों। गांधीजी उन सभी कारणों को समाज से हटाना चाहते थे। अपनी भौतिक और बाह्य वस्तुओं की जरूरत को कम करके हम झगड़े के एक कारण को दूर कर सकते हैं। इसी तरह यदि हम यह मान लें कि दूसरे के भी वही स्वत्त्व होने चाहिए, जो हम अपने लिए चाहते हैं और इसे अपना कर्त्तव्य मान लें कि हमें दूसरों को उन स्वत्त्वों को भोगने देना चाहिए, तो झगड़े के कुछ और कारण भी दूर हो जाते हैं। यह अहिंसा द्वारा ही हो सकता है। किसी भी समाज में अगर कुछ लोग अपने विचारों को, चाहे वह धर्म से, राजनीति से या मानव-जीवन के किसी भी भाग से संबंध रखते हों, अपने विचारों को दूसरों पर लादना चाहें, तो हिंसा होकर ही रहेगी। जब सब लोगों को विचार की पूरी स्वतंत्रता निश्चित रूप से दी जायगी, तभी झगड़ों से बचा जा सकता है। ये चन्द बातें हैं, जिनको गांधीजी इस देश के समाज में दाखिल करना चाहते थे।

जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, वह ऐसे सुधारकों में से नहीं थे, जिन्होंने अपना पूरा कार्यक्रम पहले से लिखकर रख दिया हो, बल्कि जैसे-जैसे प्रश्न उनके सामने आते गये, वह उनका हल निकालते गये। सबसे पहले तो इस देश के लिए उनके सामने स्वतंत्रता का प्रश्न था, जिस पर स्वभावतः उनका ध्यान सबसे पहले और अधिक गया था। इस स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए उनका विचार पक्का था, साथ ही इसके लिए वह केवल यही नहीं चाहते थे कि हिंसा का प्रयोग कार्य-रूप में न किया जाय, वरन् मनसा-वाचा हिंसा को बाहर रखना चाहते थे। इसके साथ मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि हालांकि उनका अहिंसा पर अडिग विश्वास था, फिर भी स्वराज्य-प्राप्ति में अहिंसा को इतनी दूर

तक माननेवालों का सहयोग भी वह लेना चाहते थे और लिया भी।

उन्होंने अपने चारों ओर सब तरह के लोगों को इकट्ठा कर रखा था, जो उनका साथ न देते, अगर वह मनसा-वाचा भी अहिंसात्मक रहने पर उनसे आग्रह करते। मैं ऐसे बहुत कम लोगों को जानता हूं, जिन्होंने हिंसा को अपने मानस से भी निकाल दिया हो और ऐसे कुछ लोग तो थे, जिन्होंने शब्द द्वारा हिंसा दिखलाई; पर ऐसे लोगों की संख्या कम थी जिन्होंने कार्य में हिंसा प्रदर्शित की। इसमें कोई संदेह नहीं कि वह इस मामले में भाग्यशाली थे कि उनको इस प्रयोग के लिए भारत में अच्छा क्षेत्र मिला, जो उनके योग्य था।

हमारे यहां अहिंसा की परम्परा चली आ रही है। यूरोप के हमारे दोस्त मुझे क्षमा करेंगे अगर मैं एक बात कहूं। मैंने दूसरे देशों का भ्रमण बहुत कम किया है। इसलिए किसी अन्य देश को अधिक जानने का दावा नहीं करता; पर एक बार जब मैं थोड़े दिनों के लिए यूरोप गया था, तो वहां प्रत्येक महल्ले में घूमते-फिरते एक चीज देखकर हैरान होता था। वह यह कि वहां जो स्मारक देखने में आते थे, वे योद्धाओं के स्मारक थे अथवा युद्ध और विजय के स्मारक थे। जहां जाइये, ये स्मारक हमारी आंखों के सामने आते थे। पर इस तरह की चीज आपको यहां देखने को नहीं मिलेगी। हमको इस बात का गर्व है कि हमारे लम्बे इतिहास में आपको एक भी उदाहरण ऐसा नहीं मिलेगा, जबकि हमारे देश ने दूसरे देशों को बल से जीतने का प्रयत्न किया हो। हम लोग विदेशों में गये हैं तो सांस्कृतिक, धार्मिक और ज्ञान के क्षेत्र में विजय प्राप्त करने। दुनिया के इतिहास पर जब आप नजर दौड़ावेंगे तो देखेंगे कि हमारी इस तरह की विजय किसी देश पर राजनैतिक सत्ता की विजय से अधिक टिकाऊ और लाभदायक साबित हुई है और हमारे ये सांस्कृतिक संबंध उन देशों को हमारे साथ प्रेम के रेशमी धागे में बांधे हुए हैं। यह जो हमारी प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा चली आ रही है, इससे भी महात्माजी के काम में सुविधा हुई। एक और दुनिया भी उन्हें मिली, पर यह

कहना कठिन है कि उससे सच्चा लाभ हुआ । हमारे बारे में यह कहा जा सकता है कि हम शस्त्रों द्वारा लड़ाई करने में असमर्थ थे और हममें से बहुतों ने महात्माजी की पद्धति में ही अपनी कठिनाई का एक हल देखा, क्योंकि उस पद्धति से हम बिना हथियार उठाये स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते थे । हमने इस सुविधा को संदेहजनक इसलिए बताया है, क्योंकि उसने उस परिमाण में अहिंसा के प्रति हमारी श्रद्धा को कमजोर बना दिया । जो हो, हमने उस सिद्धांत को एक हद तक इस्तेमाल किया और हम उसके प्रयोग में सफल भी हुए । पर प्रश्न यह है कि यह पद्धति राष्ट्रों के आपसी संघर्ष और किसी राष्ट्र के भीतर संघर्षों को हल करने में भी काम दे सकती है ? गांधीजी समझते थे कि उसका प्रयोग अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षों को मिटने में भी किया जा सकता है और वह प्रयोग होना चाहिए । ऐसी बात नहीं है कि गांधीजी मानव-स्वभाव की कमजोरी को नहीं जानते थे अथवा वे यों ही दुस्साहस करके खतरे उठाना चाहते थे। हमारे देश में कई उदाहरण मिलते हैं जब उन्होंने आन्दोलन को बन्द कर दिया, वह भी ऐसे समय में, जब आन्दोलन चोटी पर था, क्योंकि उन्होंने लोगों की कमजोरी समझ ली थी । जब दूसरा विश्व-युद्ध कुछ दूर तक चल चुका था, तब उन्होंने हिम्मत करके अहिंसा के इस शस्त्र को संसार के सामने रखने का साहस किया, उसके पहले नहीं ।

कई बार गांधीजी को विदेशों से निमंत्रण आये कि वह वहां जाकर लोगों को अपना संदेश दें; परन्तु गांधीजी का सदा यह उत्तर होता था कि मैं जो कुछ कहता हूं, पहले अपने देश में उनको प्रमाणित कर लूं, तब मेरा विदेशों में जाने का समय आयगा। जबतक मैं अपने सिद्धांतों को स्वयं अपने देश में कार्यरूपेण प्रमाणित न कर दूं, तबतक मुझे क्या अधिकार है कि मैं यह आशा करूं कि दूसरे देश के लोग मेरी बातें सुनें ?

द्वितीय विश्व-युद्ध में एक ऐसी स्थिति आई जो हमारे लिए बहुत ही जटिल थी और मुझे इस बात का भय है कि गांधीजी के निश्चय के संबंध

में उसपर बहुत गलतफहमी फैली। हमारे शासक, अर्थात् उस समय की गवर्मेंट ने उनकी बात समझी नहीं; पर इस बात को तो हम समझ सकते हैं और उसे क्षम्य भी मान सकते हैं, क्योंकि वे लोग जीवन-मरण के युद्ध में फंसे थे और युद्ध से बचने का और कोई रास्ता नहीं जानते थे। वे सोचते थे कि जो कोई उनका साथ नहीं देता, वह उनका शत्रु है। चूँकि गांधीजी उनका साथ नहीं देना चाहते थे, इसलिए उन्हें अधिकार था कि वे उनको अपना विरोधी समझें। इस गलतफहमी का शिकार भारत की अंग्रेजी सरकार ही नहीं हुई, बल्कि हमारे देश के बहुत से वे लोग भी, जिनका यह दावा था कि वे गांधीजी के बहुत निकट हैं और जो उनके इर्द-गिर्द रहा करते थे, इस भूल के शिकार हुए थे। लड़ाई आरम्भ होने पर जब लार्ड लिनलिथगो से गांधीजी मिले, तो उस ध्वंस-लीला की कल्पना करते ही, जिसकी लपेट में उनका चिर-परिचित लन्दन नगर आये बिना नहीं रहने वाला था, गांधीजी का गला रुंध गया था। यह सब होते हुए भी उनको यह कहने में संकोच नहीं हुआ कि भारत युद्ध में भाग नहीं लेगा और न ही उसे उसमें सहायता करनी चाहिए।

ये दोनों बातें परस्पर-विरोधी जान पड़ेंगी, परन्तु वास्तव में इनमें कोई ऐसा विरोध नहीं है। इंग्लैण्ड के लिए उनके दिल में वैसी ही सहानुभूति थी जैसी कोई भी मनुष्य दूसरे मनुष्य के साथ उसकी विपत्ति में रखता है और दिखलाता है। साथ ही उनका यह दृढ़ विश्वास था कि किसी भी आधारभूत समस्या का हल युद्ध द्वारा नहीं हो सकेगा और युद्ध संसार को किसी भी वांछनीय स्थान पर नहीं पहुंचायेगा। इसलिए युद्धरत लोगों के साथ सहानुभूति रखते हुए भी गांधीजी अपने मौलिक सिद्धांत को छोड़ने के लिए तैयार न थे। उनके इस रुख में और पहले विश्व-युद्ध के समय के रुख में विषमता थी। उसमें उन्होंने गवर्मेंट की मदद की थी। उस समय सब काम छोड़कर वह स्वयं सिपाहियों की भरती में लगे। उनके बहुत से शांतिवादी मित्र इस बात से चकित थे और उनकी स्थिति को समझ नहीं सकते थे। उस समय गांधीजी का विचार था कि

ब्रिटिश साम्राज्य संसार के कल्याण के लिए है, कम-से-कम उसके द्वारा भारत का हित तो हो रहा है। ब्रिटिश साम्राज्य पर तब उनका विश्वास था। इसलिए उन्होंने सोचा कि जरूरत के समय उनकी सहायता करनी चाहिए। वह यह भी मानते थे कि उसके विचार परिवर्त्तित किये जा सकते हैं और अपने विचारों को छोड़कर वह अपने प्रतिद्वंद्वियों के विचारों को ग्रहण कर सकते हैं। उनको इसका कुछ अनुभव दक्षिण अफरीका में हो चुका था और इस देश में जब १९१७ में उन्होंने चम्पारन में पहला बड़ा आन्दोलन आरंभ किया था, तो उस वक्त भी उनको कुछ ऐसे ही अनुभव हुए थे। इस साम्राज्य पर से अभी तक उनका विश्वास उठा नहीं था और इसलिए वह समझते थे कि अगर उसकी छत्रछाया में वह शान्ति भोग सकते हैं तो उनका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि उनके संकटकाल में उसे सहायता दें।

१९४० में यह स्थिति बिल्कुल बदल गई थी। उनका विश्वास उखड़ चुका था और साम्राज्य के विरुद्ध उन्होंने देशव्यापी आन्दोलन किया था। यह आन्दोलन ब्रिटिश लोगों के विरुद्ध नहीं, बल्कि उनके द्वारा भारत में जो प्रशासन चल रहा था, उसके विरोध में था, और इसलिए १९४० में वह स्पष्ट कर सके कि "हमें आपके द्वारा अपनी प्रतिरक्षा नहीं चाहिए। आप हमारी रक्षा करते हैं या नहीं, हमें इसकी परवा नहीं। आप जाइये और हमें भगवान् या अराजकता के सहारे छोड़ दीजिये।" इस स्थिति में पहुंच जाने पर उनको यह कहने में संकोच नहीं हुआ कि भारत इस युद्ध में किसी प्रकार की सहायता नहीं देगा। इससे उनमें और कांग्रेस में कुछ मतभेद हो गया। हममें से कुछ लोगों ने महसूस किया कि सौदा पटाने का और सरकार की मदद करके जो कुछ चाहिए था, वह प्राप्त करने का यह अच्छा अवसर है। कुछ लोगों ने उदारतापूर्वक यह समझा कि मित्र-राष्ट्रों की सहायता करनी चाहिए, क्योंकि उनका पक्ष न्यायपूर्ण है। गांधीजी को इन बातों में से कोई बात भी नहीं जंची, क्योंकि उनके मतानुसार, युद्ध में सहायता से न तो अहिंसा के पक्ष को और न स्वयं उन लोगों को, जो युद्ध

में लगे थे, कोई लाभ पहुंचता। इसलिए उन्होंने युद्ध में सहयोग के विरोध का निर्णय किया।

मेरे खयाल में यह ब्रिटिश सरकार की अदूरदर्शिता थी कि उन्होंने कांग्रेस की सहायता को स्वीकार नहीं किया और इस तरह से एक ऐसा मौका दिया, जिससे कांग्रेस और गांधीजी फिर एक साथ काम कर सके। कांग्रेस गांधीजी के बताये हुए रास्ते से अलग हो गई थी, परन्तु ब्रिटिश सरकार के इन्कार ने उन दोनों को फिर एक कर दिया। सरकार को सहायता देकर कांग्रेस जो लेना चाहती थी, जब उसको वह नहीं मिला, तो उसने महसूस किया कि युद्ध-प्रयत्नों के बहिष्कार के सिवा उसके लिए और कोई रास्ता नहीं, और १९४० में यही कुछ हुआ। १९४२ में बड़े पैमाने पर उसकी पुनरावृत्ति हुई।

मैंने कहा है कि शायद हमारी असफलता से कुछ सबक मिले। इस बात की ओर मैं आपका विशेष ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। उस सम्बन्ध में हम नाकामयाब रहे और कांग्रेस ने ऐसा रास्ता सिद्धांततः अपनाया, जो गांधीजी को मान्य नहीं था। वह रास्ता सिद्धांतों, सच्चाई और अहिंसा का नहीं, बल्कि तात्कालिक आवश्यकताओं का था। यदि इसके बाद हम गांधीजी के आदर्शों और कार्यक्रम को पूरी तरह नहीं निभा सके, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ! एक बार फिसल जानेपर हम अभीतक यह नहीं समझ पाये हैं कि अहिंसा से काम चल सकता है और किसी भी अवस्था में हिंसा की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। उसी समय गांधीजी ने हिटलर को पत्र लिखा था। उन्होंने चैक जनता से अपील की थी कि वह अहिंसा द्वारा जमीनों का प्रतिरोध करे। इसी प्रकार उन्होंने ब्रिट्रेन निवासियों से भी अपील की थी कि वे लड़ाई करके जो-कुछ चाहते हैं, उसे अहिंसा द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

दुर्भाग्यवश ठीक ऐसे समय जब हम अहिंसा-सम्बन्धी परीक्षण करने की स्थिति में हुए, गांधीजी हमसे विदा हो गये। संसार में कुछ व्यक्ति ऐसे हो चुके हैं, जिन्होंने अपने जीवन में अहिंसा से ही काम लिया और दूसरों

को भी अहिंसा अपनाने की शिक्षा दी। जन-समुदायों और राष्ट्रों के बीच मतभेदों को दूर करने के लिए बड़े पैमाने पर अहिंसा का प्रयोग करने का श्रेय गांधीजी को ही है।

जैसाकि मैंने कहा, गांधीजी को इस देश में यह परीक्षण करने के लिए अनुकूल वातावरण मिला। मुझे यह भी स्वीकार करना चाहिए कि हमारे विरोधी भी सज्जन थे, जिनमें अहिंसा की शक्ति को स्वीकार करने की क्षमता थी। उन्होंने निजी कार्यवाहियों के लिए एक मर्यादा निर्धारित कर ली थी, जिससे नीचे अंग्रेज लोग नहीं जा सकते थे और न गये। हमें यह मान लेना चाहिए कि गांधीजी की सफलता, बहुत हद तक केवल उनके निजी व्यक्तित्व और भारतवासियों के कारण नहीं हुई, बल्कि उसका कारण अंग्रेज लोग भी थे। मैं नहीं कह सकता और ऐसा सोचना केवल अनुमान लगाना होगा कि यदि उनके विरोधी सज्जन न होते, जो अपने अत्याचारों की कोई सीमा नहीं मानते और जो अपने शत्रु के प्रति किसी भी प्रकार का व्यवहार कर सकते, तो गांधीजी के परीक्षणों का क्या फल होता ? हम नहीं कह सकते कि उस अवस्था में गांधीजी अहिंसा पर अटल रह पाते और ऐसे विरोधी को अहिंसा द्वारा जीत लेते या नहीं। क्या होता, यह सब केवल अनुमान की बात रह गई है।

अहिंसा का प्रयोग यहां अधूरा रहकर ही समाप्त हो गया। अब यह आप लोगों का कर्त्तव्य है कि आप इसके कार्यक्षेत्र को अधिक विस्तृत करें और यह देखें कि आज की परिस्थिति में हम कहां तक सफल हो सकते हैं।

मैं जानता हूं कि यह कठिन काम है; परन्तु इस संबंध में हमें लोगों को शिक्षित करना है। इसलिए गांधीजी ने शिक्षा की अवहेलना नहीं की। गांधीजी जिस शिक्षा की कल्पना करते थे और जिसके लिए उन्होंने कार्य-क्रम बनाया, वह उस शिक्षा से जिसका विदेशों में चलन है, कुछ भिन्न थी। बच्चे की प्रवृत्तियों का पूर्ण विकास, बाह्य निषेधों को हटाकर जो उसके अन्दर है, उसको बाहर लाना, यह गांधीजी के शिक्षा-सम्बन्धी कार्यक्रम का अंग था। उनका उद्देश्य मृतकों के समान सबको एक-ही स्तर पर लाना

नहीं था। उनकी योजना यह नहीं थी कि जैसे किसी सड़क के छोटे और बड़े पत्थर के टुकते होते हैं, पर सभी भारी यंत्र से दबाकर बराबर कर दिये जाते हैं, उसी प्रकार सभी लोग एक बराबरी में ला दिये जायं। उनकी योजना यह थी कि प्रत्येक बच्चे का अपने ढंग से, और अपने ही वातावरण में, पूर्ण विकास हो सके। चूंकि हिंसा के लिए उनकी योजना में कोई स्थान नहीं था, इसलिए बच्चों का पालन-पोषण पूर्ण हिंसा के वातावरण में होगा और वे अहिंसा का सच्चा अर्थ समझ पायंगे।

परन्तु आप लोग, जब कभी फिर मिलने का अवसर मिले, इस बात पर विचार करें कि गांधीजी का समाज के सम्बन्ध में क्या आदर्श था। इसके जाने बिना शोषण का कार्य समाप्त नहीं किया जा सकता और अगर शोषण समाप्त नहीं हुआ तो अहिंसा का भी अन्त नहीं हो सकता।

लार्ड बॉयड ओर[१] ने अपने प्रतिवेदन में जो कुछ कहा, वह मैंने बहुत ध्यान और सम्मान से सुना। एक वाक्य उसमें मुझे कुछ विचित्र-सा लगा। आपने यह निश्चय किया है कि आप प्रतिरक्षा के लिए सेना रखना वैध समझते हैं। मैंने ऐसा कोई युद्ध नहीं सुना, जिसे आक्रांताओं ने आक्रमणात्मक माना हो। संसार के इतिहास में प्रत्येक युद्ध प्रतिरक्षात्मक युद्ध ही घोषित किया गया है। जबतक हम यह छोटा-सा दरवाजा खुला रखेंगे, जिसके द्वारा प्रतिरक्षात्मक युद्ध का समावेश हो जाय, तबतक पूर्ण अहिंसा की स्थापना नहीं हो सकेगी। किसी-न-किसी को साहस से काम लेना पड़ेगा। गांधीजी ने साहस किया। जहांतक हमारे देश का सम्बन्ध है, उन्होंने स्पष्ट कह दिया था, "हमें भगवान या अराजकता के भरोसे छोड़ दीजिये। हमें लड़ाई में न लपेटिये और आप यह आशा न रखिये कि इस युद्ध में हम आपकी सहायता करेंगे।"

मैं नही कह सकता कि यदि हमें रास्ता दिखाने और प्रेरणा देने के लिए गांधीजी जीवित होते, तो हम क्या करते, परन्तु पिछले युद्ध में दोनों

[१] 'गांधी-दर्शन-परिषद्' के अध्यक्ष।

पक्षों से युद्ध के परिहार के लिए अपील करके उन्होंने अपनी स्थिति बिल्कुल स्पष्ट कर दी थी। यह सोचना गलत होगा कि किसी भी अवस्था में वह असत्य या अन्याय के आगे झुकने को तैयार थे। ऐसा करना उनकी आत्मा और उनके व्यक्तित्व के प्रतिकूल था। मनुष्य की निम्न प्रवृत्तियों, जैसे घृणा अथवा बदले की भावनाओं, के सामने झुकना वह कायरता के सामने झुकना मानते थे, जो दूसरे पर प्रहार किये बिना व्यक्ति अथवा राष्ट्र की रक्षा नहीं कर सकता, वह भी एक प्रकार से कायरता के सामने झुकना है। वह मानव में ऐसा साहस चाहते थे जो विरोधी के बुरे-से-बुरे व्यवहार को, विरोधी के प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना के बिना, सहने की सामर्थ्य प्रदान करे। ऐसे साहस के बलपर मानव अन्ततक विरोधी का मुकाबला करे और इस प्रयत्न में अपने प्राण भी दे दे, जिसका अर्थ होगा उसकी विजय, क्योंकि विरोधी उसे झुकाने में असफल रहेगा, और विरोधी के लिए यह हार होगी, क्योंकि वह उसे झुकाने में अपने को असमर्थ पायेगा। जब-तक कोई राष्ट्र इस प्रकार के साहस का प्रश्रय नहीं लेता, और यह दृढ़ संकल्प करके कि उसे किसी भी अवस्था में प्रतिरक्षात्मक अथवा आक्रमणात्मक, किसी भी प्रकार का, युद्ध नहीं लड़ना है, कोई सुनिश्चित युद्ध-विरोधी कार्यक्रम लेकर मैदान में नहीं आता और किसी भी प्रकार की सेना रखना छोड़ नहीं देता, तबतक अहिंसा की लड़ाई जारी रहेगी और विजय आंखों से ओझल रहेगी।

किसी-न-किसी राष्ट्र को यह साहस दिखाना ही होगा। यह नहीं कह सकते कि वह कौन-सा राष्ट्र होगा। स्पष्ट है कि आज यह काम हम नहीं कर सकते, यद्यपि हम अपने आपको गांधीजी की विचारधारा और उनके उपदेश का उत्तराधिकारी मानते हैं। फिर भी यह काम किसी को करना ही है। मैं आशा करता हूं कि इस सम्मेलन में हुए विचार-विमर्श के परिणाम-स्वरूप आप यह संदेश संसार के अन्य देशों तक पहुंचा सकेंगे।

हमारे देश में एक कहावत है कि चारों तरफ रोशनी होते हुए भी कभी-कभी दिया-तले अंधेरा होता है। आशा है, हम इस कहावत को

चरितार्थ नहीं करेंगे और आप इसकी सच्चाई के दिये के ठीक नीचे न होते हुए भी इससे रोशनी लेकर प्रमाणित कर देंगे। यदि यह गोष्ठी गांधीजी की विचारधारा को संसार के सामने रख सके, तो यह बहुत बड़ा काम होगा। मैं इस विचारधारा को व्यावहारिक मानता हूं और यह समझता हूं कि यदि हममें आवश्यक साहस हो तो इसे कार्यान्वित किया जा सकता है।

गांधी-दर्शन-परिषद्, नई दिल्ली में
दिया गया भाषण।